10/78

शोमसी

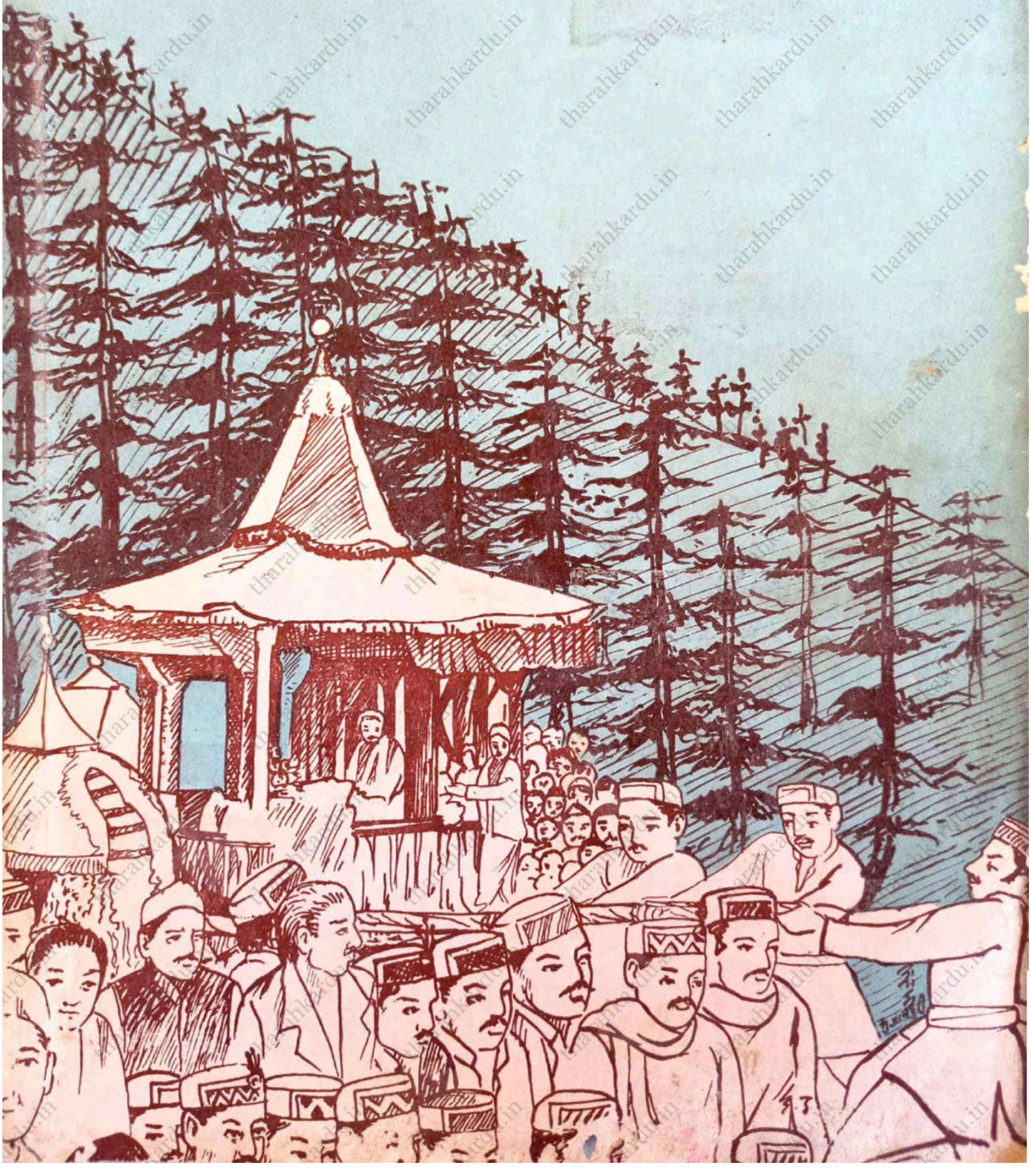

tharahkardu.in

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष 4 अक्तूबर 1978 अंक 4

मुख्य सम्पादक

अध्यक्ष अकादमी
दौलत राम चौहान

सम्पादक

हरिचन्द पराशर

सहयोगी

सरोज शर्मा

आवरण

ओम प्रकाश

१६

कुल्लूई विशेषांक जनपदीय उपभाषा
कला एवं ग्राम्या संस्कृति

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य।

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं।

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परीमहल, शिमला-171009

सोमसी अक्तूबर, 1978

इस अंक में :-

१.	कुल्लू का भौगोलिक व ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और सामान्य धार्मिक विश्वास	श्री व्योमेश चन्द्र	१
२.	संबत् १६०० के बाद का कुल्लू का इतिहास : हिन्दी रुपान्तर	श्री चन्द्रशेखर'बेबस'	७
३.	सांस्कृतिक स्मारक	श्री देवेन्द्र	२१
४.	कुल्लू में मन्दिर व मूर्तिकला	कुमारी पुष्पा बिन्द्रा	२६
५.	कुल्लू के लोकगीत-लोक नृत्य तथा लोक नाट्य	श्रीमती उर्मिला बलराम	३३
६.	कुल्लूई लोकाचार-लोक विश्वास टूने टोटके व लोक चेटक	कु. विद्या शर्मा	४१
७.	कुल्लूई उत्सव, त्यौहार और पर्व	श्री बलदेव कुमार	४८
८.	कुल्लू के जन-जीवन की झांकी	श्री विद्या चन्द ठाकुर	५६
९.	बाहरी सिराज (कुल्लू) का लोक-साहित्य और संस्कृति	श्री ठाकुर दत्त शर्मा	६६
१०.	कुल्लू के संस्कार	श्री नरेन्द्र शर्मा	७६
११.	कुल्लूई का व्याकरण	श्री मौलू राम ठाकुर	८२
१२.	कुल्लू की चित्रकला	श्री हरचरण सिंह	१०७
१३.	कुल्लू के विशिष्ठ मुहावरे व लोकोक्तियां	श्री प्रकाश देव	११४

वार्षिक चन्दा 12 रु०

एक प्रति — 3 रु०

tharahkardu.in

सम्पादकीय :

विषय अनुशासन में जनपदीय सामग्री-संकलन क्षैतिज अध्ययन की श्रेणी में आता है। ऐसे अध्ययनों का प्रयोजन जनजागरण के निमित्त जानकारी जुटाना अधिक स्पष्ट होता है और विषय की ऊंचाई गहराई मापना गौण रहता है।

अकादमी की एक योजना उपभाषा संस्कृति पुस्तिकाएं प्रकाशित करने की थी। उस के अन्तर्गत महासूई, कुल्लूई और लाहुली उपपुस्तिकाएं संकलित और सम्पादित होनी आरम्भ हुई थी। प्राप्त सामग्री की समूची संवीक्षा करके यह सोचा गया कि पहले इस सामग्री को 'सोमसी' में विशेषांक करके प्रकाशित किया जाए। तदनुसार महासूई विशेषांक पहले प्रकाशित हो चुका है, कुल्लूई विशेषांक यह आपके हाथों में है और लाहुली विशेषांक यथा समय प्रकाशित किया जाएगा।

जनपदीय अध्ययनों के लिए और उन अध्ययनों से प्राप्त सामग्री की समीक्षा द्वारा ज्ञान-अर्जनार्थ एक विशिष्ट प्रकार का दृष्टिकोण अपेक्षित रहता है। उसे हम मध्यवाद (मिडिएवलिज्म) कह सकते हैं। मध्ययुग अथवा मध्यवाद का अर्थ काल अथवा समय के लिए उतना उपयुक्त नहीं, जितना उपयुक्त दृष्टिकोण अथवा मनोवृति के लिए है। इस मनोवृति में धार्मिक मत-मतान्तरों एवं देवी-देवताओं की बहुतायत, श्रद्धा और विश्वास का ऊंचा स्थान, जिज्ञासा और युक्ति का गौण स्थान, भावना, कला, भाषा, साहित्य, लिपि और राजनीतिक प्रक्रियाओं में प्रादेशिक भावना का प्राधान्य, असीम और विशाल ज्ञानराशि के प्रति अरूचि, तथा प्राचीन ग्रंथों की टीका एवं भाष्यलेखन की प्रवृति सम्मिलित हैं।

आधुनिक युग में मध्यवादी दृष्टिकोण को हेय समझा जाता है परन्तु जनपदीय अध्ययनों का महत्त्व माना जाता है। इसके दो कारण हैं, एक यह है

कि राजनीतिक स्वतन्त्रता के पश्चात् सन् पच्चास के आसपास गांधीवादी दृष्टिकोण ने संस्कृति के धरातल पर **'गांव की ओर'** की लहर को उद्वेलित किया, साहित्यिक स्तर पर इस के अनेक आयाम व्यक्त हुए, दूसरा यह कि गांवों के युवक पढ़ लिखकर अपनी **'ग्राम्या'** की ओर अधिक आदर भाव से आकृष्ट हुए। भारतीय गंगा में 'ग्राम्या' हिलोर तरंगायित होने लगी। उधर बुद्धिजीवियों में **'वैज्ञानिक बुभुक्षा'** जागी, वे प्रत्येक के बारे में निष्प्रयोजन ही कुछ न कुछ जानने के लिए व्याकुल और व्यग्र होने लगे। इस वैज्ञानिक बुभुक्षा ने पहले दो कारणों से मिलकर एक विचार तलागम पैदा किया जिससे दूरदराज के गांवों और जनपदों के प्रति रूचि और जिज्ञासा उत्पन्न हुई। तरह तरह की ऊब वाले बुद्धिजीवी 'ग्राम्या' का आंचल पकड़ने लगे।

देवधरा कुल्लू बौद्धिकों और पर्यटकों दोनों के लिये आकर्षण स्थली रही है। इस जनपद पर बहुत कुछ लिखा गया है परन्तु इस में से अधिकांश बाहर के ऐसे विद्वानों द्वारा है जिन्होंने कुल्लू आकर्षण की मोहित एवं आविष्ट अवस्था में लिखा है। इस अंक में कुल्लू के लेखकों की विचारावली है, विषय अलग २ हैं, प्रत्येक का अलग महत्त्व है। पुरोहित चन्द्रशेखर ने एक प्राचीन ऐतिहासिक पाण्डुलिपि का हिन्दी रूपान्तरण दिया है। मूल पाण्डुलिपि पहाड़ी मिश्रित खड़ीबोली में है।

पढ़ना एक सामाजिक कार्य है। इसी से हम लिखित ज्ञान का लाभ उठा सकते हैं। इस प्रदेश में पुस्तक उद्योग और लेखनकर्म को वास्तविक प्रोत्साहन तभी प्राप्त हो सकता है जब मध्य वर्ग का 'श्वेत कालर-समूह' पुस्तक-पत्रिका खरीद कर पढ़ने लगेगा और पढ़कर अपने गृह-पुस्तक कक्ष सजाने में रूचि लेगा।

●हरिचन्द पराशर

कुल्लू का भौगोलिक व ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और सामान्य धार्मिक विश्वास

●व्योमेश चन्द्र

भौगोलिक स्थिति :

समुद्रतल से 650 मीटर और 6,000 मीटर की ऊंचाई के मध्य स्थित इस पर्वतीय-भूखण्ड का क्षेत्रफल 4,556 वर्गमील है। इस पर्वतीय भूखण्ड का तीन चौथाई से अधिक भाग वनों से भरा है। 5,000 मीटर से ऊंची पहाड़ियां बनस्पति रहित हैं। केवल एक चौथाइ से भी कम भूमि खेती योग्य रह जाती है।

पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण यहां कई नदियां बहती हैं। बड़ी नदियों में केवल दो ही मानी जाती हैं सतलुज और ब्यास। छोटी नदियों में पार्वती, सरवरी, तीर्थन और कुरपन आदि उल्लेखनीय हैं। पार्वती तथा सरवरी ब्यास में मिलती हैं तथा शेष सतलुज में। इन नदियों के स्रोत हिमाच्छादित पर्वत हैं इसलिए इन में पूरे वर्ष भर पानी रहता है। नदियां घाटी के बीच से बहती है एतएव इनको नहरों में नहीं बदला जा सकता। सिंचाई के लिए भी नदियों का प्रयोग भली प्रकार से नहीं हो पाता।

इस क्षेत्र की ऊंचाई जलवायु सेब, नाशपाती, चेरी और प्लम जैसे फलों के लिए उपयुक्त है। यही कारण है कि इस क्षेत्र में फलों के बागीचे अधिक मात्रा में हैं। फल उत्पादन से आय ज्यादा होने के कारण इस क्षेत्र के लोग अनाज की रबि और खरीफ की फसलों पर कम ध्यान देते हैं। मेरा अभिप्राय यह नहीं कि अनाज की फसलें बोई ही नहीं जाती। रबि की फसल में गेहूं और जौ अधिक उगाए जाते हैं। खरीफ की फसल में मुख्यता मक्की धान और विभिन्न दालें हैं। सिचाई की उपयुक्त व्यवस्था न होने के कारण फसलों का उत्पादन बहुत कम होता है। इस क्षेत्र में आलू का उत्पादन भी होता है। फलों में अनार आड़ू, अखरोट, खनोर (चेस्टनट) और नींबू आदि भी उगाए जाते हैं।

कुल्लू क्षेत्र एक विस्तृत क्षेत्र है, अतः यहां का जलवायु विभिन्न स्थानों पर विभिन्न है। जहां ऊंचे क्षेत्र वर्ष भर बर्फ से ढके रहते हैं, वहां निचले क्षेत्रों में बर्फ नाम मात्र की पड़ती है या पड़ती ही नहीं। वर्षा ऋतु में वर्षा काफी मात्रा में पड़ती है। औसत वर्षा 35 इंच तक होती हैं। जाड़ों में सर्दी पूरे जोरों पर रहती है। गर्मियों में मौसम सुहावना होता है। कम उंचाई के क्षेत्रों में गर्मी कुछ ज्यादा पड़ती है। गर्मियों का सुहावना मौसम ही पर्यटकों को विशेष रूप से आकृष्ट करता है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :

इस क्षेत्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जानने में बहुत सी मुश्कलें सामने आती हैं। लिखित रूप से किसी सामग्री का अभाव सब से अधिक है। शिलालेखों और प्राचीन सभ्यता के अवशेषों की कमी भी अखरती है। यात्रा वर्णनों में केवल चीनी यात्री युवांच च्वांग ने किऑलुतो देश का वर्णन किया है। इस यात्रा वर्णन से यह मालूम होता है कि यह देश जालन्धर से उत्तर-पूर्व में स्थित था। निश्चय ही उस समय में यह क्षेत्र एक देश रहा होगा। युवान च्वांग ने सातवीं सदी में इस क्षेत्र की यात्रा की थी। किऑलुतो देश के समीपवर्ती क्षेत्रों में युवान च्वांग ने जिन प्रदेशों का वर्णन किया है उनमें लोयुलो मुख्य है। सम्भवतः लोयुलो आजकल के लाहुल क्षेत्र के लिए प्रयुक्त किया गया था।

कई पुराने ग्रन्थ जैसे रामायण, महाभारत, राजतरंगिणी और वादंवरी आदि में कुल्लू प्रदेश का नाम मिल ही जाता है।

वृहत्संहिता में भी कुल्लू का नाम कुलूत के रूप में आता है। वृहत्संहिता को छठी शताब्दी में लिखा गया था।

कुछ समय और जाने पर दूसरी शताब्दी का प्रमाण भी मिलता है। दूसरी शताब्दी के सिक्के पर ये शब्द अंकित है :- "राज्ञो कूलूतस्य: विरायासस्य: ।"

इससे स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि द्वितीय शताब्दी में भी कुलूत नाम का एक देश था और उस का राजा विरायास था। चीनी यात्री युवान च्वांग के यात्रा वर्णन को आधार मान कर विद्वानों का यह मत है कि तत्कालीन कुलूत ही आज का कुल्लूत है।

एक संस्कृत नाटक-मुद्राराक्षस-जो सम्भवतः चौथी सदी में लिखा गया था - कुल्लूत देश का वर्णन लिए हुए है। नाटक में पांच राजाओं का वर्णन है जो मल्लय के साथी थे और चन्द्रगुप्त के विरोधी। इन पांच राजाओं में कुलूत के राजा का भी नाम है।

एक अन्य संस्कृत नाटक कादम्बरी में भी कुलूत देश का वर्णन आता है। इसकी रचना वाणभट्ट ने सातवीं शताब्दी में की थी। इस प्रसिद्ध नाटक में एक स्थान पर वर्णित है कि उज्जैन के राजा तारापीड ने कुलूत देश पर चढ़ाई की थी। इस बात से सिद्ध होता है कि सातवीं सदी में कुलूत एक देश था।

चौहदवीं सदी में रचित कल्हन की राजतरंगिणी में भी कुलूत देश का वर्णन आता है।

स्त्रोतों की कमी होने के बावजूद हमें इस प्रदेश के ऐतिहासिक काल का काफी विवरण प्राप्त होता है। इस प्रदेश में आर्यों का आगमन सर्वप्रथम नहीं था। आर्यों के आने से पूर्व भी इस प्रदेश में लोग बसते थे। आर्यों को यह प्रदेश दो प्रमुख जातियों से भरा मिला। ये जातियां थी नाग तथा किन्नर। इन जातियों के अपने रीति-रिवाज थे, रहने का ढंग और प्रशासनिक व्यवस्था भी अपने ही ढंग की थी। जीवन निर्वाह मांस और जंगली फलों से किया जाता था। इन जातियों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी का अभाव है। ठोस प्रमाणों के अभाव के कारण भी इन जातियों के सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है। हां इन जातियों के तुरन्त बाद आने वाली जातियां जैसे कुलिन्द और तगण आदि का नाम प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में भी आता है। ये जातियां पर्वतीय मार्गों से इस क्षेत्र में आई। इनके आगमन के बाद ही यहां बसने वाले लोगों का अन्य स्थानों पर बसने वाले लोगों से मेल जोल बढ़ा। इसी दौरान आर्य तपस्या करने के लिए यहां आ कर बसने लगे। आर्य इस क्षेत्र में कई यज्ञ तथा समारोह आयोजित करते थे।

कुलिन्द जाति का विवरण महाभारत में मिलता है। इस जाति के कुछ मुख्य लोगों ने युधिष्ठर को एक यज्ञ के अवसर पर एक सोने का उपहार दिया था। इन बातों से मुख्यता दो विचार सामने आते हैं - एक यह कि हिमालय के इस क्षेत्र में हिन्दु राजाओं का राज्य था। दूसरे यह कि यह प्रदेश विभिन्न जातियों का रहने का स्थान था जो विभिन्न भागों में बंटा था। इन भागों में कुछ भाग छोटे थे तथा कुछ बड़े। लोक-कथाओं और लोक गीतों को आधार मान कर यह कहा जा सकता है कि इस प्रदेश का शासन मार, राजा और ठाकुरों के हाथों में भी था। कहीं तो यह शासक नाम मात्र स्थान के शासक थे और कहीं एक विस्तृत क्षेत्र के।

जनश्रुतियों के अनुसार मावी या मवाणों का राज्य राणाओं से पूर्व था। ये बड़े कट्टर और अड़ियल बताए गए हैं। सम्भवत: ये पंचायतों के मुखिया थे लेकिन बाद में शासक बन गए। इन्हें मैदानी इलाकों से आया माना गया है। हालांकि कुछ लोग यह भी मानते हैं कि ये स्थानीय लोग ही थे, जिन्हें उपाधि सूचक मावी कहा जाने लगा था।

जैसे कि पहले कहा गया है कि राणा और ठाकुर भी छोटे-२ प्रदेशों के शासक थे। धीरे-२ ये राणा और ठाकुर अपने राज्य को बढ़ाते गए। मावीयों के पतन के पश्चात् राणा और ठाकुर

tharahkardu.in

सत्ता में आए। सैंकड़ो वर्षों तक इन्होंने राज्य किया। ये स्वतन्त्र और शान्ति प्रिय शासक थे। इनका शान्ति प्रिय होंना भी दो कारणों से हो सकता है - यह वास्तव में शान्ति चाहते थे। या फिर निकटवर्ती राजाओं को शक्तिशाली जान कर उनसे मित्रता कर लेते थे। जिससे ये शान्ति प्रिय कहलाने लगे। हालांकि प्रजा के प्रति इनका व्यवहार निंदनीय था। राणा और ठाकुरों के राज्य घटते बढ़ते रहते थे। कारण केवल आपस के झगड़े ही थे।

राणाओं और ठाकुरों के सम्बन्ध में विशेष लिखित सामग्री नहीं है। लोककथाओं से मालुम होता है कि राणा बहुत क्रूर और निर्दयी थे। उन के बनाए कानूनों का सब को पालन करना पड़ता था। कठोर दण्ड दिये जाते थे। मौत की सजा मामूली सी बात थी। लूट मार करवाना इनका मुख्य काम था। इनका व्यवहार अमानुषिक था। खान-पान भी सुधरा हुआ नहीं था। प्रजा में आत्मविश्वास और आत्मसमान समाप्त हो चुका था। जीना दूभर हो गया था। लोग जीवन को भार समझ कर उठाए जा रहे थे।

इस प्रदेश में पहले देवताओं का राज भी रहा होगा। इस बात का प्रमाण आज की एक स्वतन्त्र जनतान्त्रिक क्षेत्र मलाणा से मिलता है। यहां का शासन ऋषि जमदग्नि के अधीन है, जिसे कार्यरूप पंचायती आधार दिया जाता है। मलाणा क्षेत्र के लोगों ने कई शासकों को देखा है। अंग्रेजी शासक भी इस क्षेत्र की शासन पद्धती को न बदल सके। इस क्षेत्र के किसी भी व्यक्ति को न्याय पाने के लिए किसी न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाना पड़ता। मलाणा क्षेत्र के आज भी अपने कानून हैं। पंचायत का निर्णय सब को मान्य होता है।

ठाकुरों और राणाओं के शासन की समाप्ति के बाद, बाहर से आए राजाओं का राज्य शुरु हुआ। ये राजा बहुत शक्तिशाली थे। थोड़े से विरोध के बाद ठाकुरों और राजाओं ने इन की प्रभु-सत्ता स्वीकार कर ली। सत्रहवीं शताब्दी तक अधिकांश ठाकुरों और राजाओं के राज्य समाप्त हो चुके थे। वैसे कुल्लु का राजवंश इसा की पहली या दूसरी शताब्दी में कुल्लु आ चुका था। लेकिन इस के बाद कई शताब्दियों तक इन राजाओं का ठाकुरों और राणाओं से युद्ध होता रहा। प्रारम्भ में ये राजा बनजारों की तरह रहे, लेकिन धीरे-२ इन्होंने अपना राज्य विस्तार किया।

इन राजाओं के राज्य में भी प्रजा की दशा कोई सुधरी हुई नहीं थी। एक मात्र अन्तर दीख पडता था कि अब राणाओं के राज्य की तरह कोई अत्याचार नहीं थे। इस का कारण केवल यही हो सकता है कि राजाओं का राज्य बहुत विस्तृत हुआ करता था। जबकि राणाओं को राज्य सीमित होने के कारण, इन का जनता के बीच में रहना और व्यक्तिगत सम्पर्क ही अत्याचार करवाता था। राजाओं के राज्य में राजा को केवल जनता का प्रतिनिधि माना जाता था। आम तौर पर राजा अपनी राजधानी में ही रहता था राजा को न्यायमूर्ती माना जाता था। राजाओं के शासन में बहुत सी कमियां थी। क्षेत्रीय प्रशासन मंत्रियों आदि के हाथ में होता था। सपने क्षेत्र में ये मंत्री

अपने को राजा से कम नहीं समझते थे। वास्तव में ये मंत्री कोई बुद्धिमान व्यक्ति नहीं होते थे। जनता की शिक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। लोग कृषि पर ही निर्भर रहते थे। मंत्रियों की निरंकुशता के कारण लोग पीड़ित थे। सुखी जीवन एक खूबसूरत कल्पना थी।

समय की गाड़ी आगे चलती गई और कई घटनाओं को स्टेशनों की तरह पीछे छोड़ती गई। उस समय से लेकर आज तक के समय के बीच में कई परिवर्तन आए। एक के बाद दूसरा राजा वंशानुगत आता रहा। इसी समय के दौरान कई हमले हुए। विदेशी राजा लूट मार करते रहे लेकिन इस क्षेत्र की संस्कृति को न मिटा सके। लोगों का धार्मिक विश्वास ज्यों का त्यों बना रहा।

सामान्य धार्मिक विश्वास

कुल्लू प्रदेश को देवी देवताओं का स्थान माना जाता है। इस सारे क्षेत्र में देवी देवताओं के निवास स्थान हैं। इसी कारण इस क्षेत्र को देव-भूमि भी कहा जाता है। लगभग प्रत्येक गांव में या एक उपक्षेत्र में किसी न किसी देवी या देवता का मन्दिर स्थापित है। परिणाम-स्वरुप इस क्षेत्र के लोगों में अटल धार्मिक विश्वास है। मेलों और उत्सवादी के अवसर पर देवी देवताओं की झांकियां निकाली जाती हैं। देवी-देवताओं के सम्मान में कोई कमी नहीं आई है। इन का सम्मान पहले की भान्ति ही किया जाता है। कारण देव-कोप का डर भी हो सकता है।

किसी भी शुभ कार्य पर सर्वप्रथम कुल देवी या देवता का पूजन किया जाता है। यह बात इस क्षेत्र के लोगों का देवी-देवताओं में अथाह विश्वास का प्रतीक है।

इस क्षेत्र में असंख्य देवी देवताओं की मान्यता है। लेकिन किसी विशेष क्षेत्र में किसी एक देवी या देवता की अधिक मान्यता होती है। कुल्लू घाटी के सुलतानपुर में स्थित रघुनाथ जी का मन्दिर और यहां स्थापित श्री राम चन्द्र की मूर्ती जहां लोगों को पूज्य है, वहां सारे क्षेत्र के देवी-देवता भी पूज्य माने जाते हैं। दशहरे के अवसर पर जब देवी-देवता दूर-२ से आते है तो सर्वप्रथम रघुनाथ जी के मन्दिर में नतमस्तक होते हैं। इस के बाद ही वह अपने-२ विश्राम स्थानों पर जाते हैं।

बिजली महादेव की भी मान्यता कम नहीं है। यह मन्दिर कुल्लू से ५ कि० मी० दूर पूर्व की पहाड़ी पर स्थित है। यहां एक शिवलिंग है। इस मन्दिर के साथ कई विचित्र और रोचक कहानियां सम्बन्धित हैं, जिन का विवरण यहां सम्भव नहीं है। सावन के महीने में असंख्य नर-नारी यहाँ जाते हैं। महादेव में लोग असीम विश्वास रखते हैं।

मेखली नाम के स्थान पर मेखली देवी के नाम से प्रसिद्ध देवी का मन्दिर, मनाली के समीप ढुंगरी में हिडिम्बा देवी का मन्दिर, नागर में त्रिपुरा सुन्दरी का मन्दिर प्रमुख देवियों के मन्दिर

हैं। इस सारे क्षेत्र में इन देवियों का पूजन किया जाता है। लोगों को इन देवियों में अपार श्रद्धा है।

मलाणा में ऋषि जमदग्नि का स्थान है। अन्य कई स्थानो पर भी ऋषि जमदग्नि के मन्दिर हैं। कारण लोगों का ऋषि जमदग्नि-जिसे जमलूदेऊ भी कहा जाता है – में विश्वास है।

इस क्षेत्र में जहां देवी देवताओं को पूजा जाता है, वहां नागों की भी पूजा की जाती है।

इस सारे क्षेत्र में अठारह विभिन्न नागों की मान्यता है। इन में प्रमुख हैं :- वासु नाग, शिरघन, घुम्मल नाग, माहुरी नाग, कूमरदानु, काणा नाग और पींउली नाग।

कुल्लूवादी के सभी देवता कुल्लू दशहरा के अवसर पर एकत्र होते हैं। अक्तूबर 1973 से कुल्लू दशहरा अन्तर्राष्ट्रीय लोक उत्सव के रूप में भी मनाया जाता है। देवयात्रा लोक संस्कृति का अंग बन कर सुरक्षित हो गई है।

★★
★

सोमसी

मायापुर पैलेस आन्नी में प्राप्त नागरी लिपि और हिन्दी पहाड़ी मिश्रित भाषा की पांडुलिपि

संबत् १६०० के बाद का कुल्लू का इतिहास का हिन्दी रूपान्तर

●अनुवादक चन्द्र शेखर बेबस

भादर सिंह से पहले जो राजे हुए उनका राज परोल वजीरी तक ही रहा, रुपी की वजीरी में ठाकुरों का राज था. जो सुकेत के राजा को नजराना दिया करते थे। राजा भादर सिंह ने सब से पहले हरकंड़ी का ठाकुर मार कर अपना अम्ल किया। फिर कोठी कनाउर पर चढ़ाई की, वहां के ठाकुर को मार कर वहां भी कब्जा किया, फिर उसी समय चुंग (चौंग) कोठी का ठाकुर पकड़ा और मार दिया चुंग कोठी पर भी अपना राज्य स्थापित किया। फिर कोठी कोटकंढी पर चढ़ाई की, छयोडर (छेंडर) का ठाकुर आकर मिला. अपने गुजारे के तीन गांव छोड़कर बाकी राजा को सौंप दिया और स्वयं भी राज सेवा में शामिल हुआ।

इसी कोटकंढ़ी क्षेत्र में बोसा नाम स्थान का ठाकुर कुछ सबल था, वह राजा से मिलने नहीं आया, राजा ने उस का सारा क्षेत्र अपने अधिकारी में कर लिया, कोटकंढी के किले पर भी कब्जा किया और बोश के ठाकुर को पकड़ लिया। तब उस ने राजा की अधीनता स्वीकार की, उसे एक गांव वोशा गुजारे के लिए दिया, परन्तु जब वह वोशे पहुंचा तो फिर अधीनगी से मुकर गया। उसे पुनः पकड़ा और उस स्थान की कुछ मिट्टी भी मंगवाई। जब वह राजा के पास हाजर किया और पूछा गया कि तुम विजित मानकर अपने को हमारे अधीन करोगे या नहीं ? तो उसने राजा की अधीनता स्वीकार कर ली, इस पर राजा ने वोशे से लाई हुई मिट्टी उसके आसन के नीचे बिछाई और फिर पूछा तो उसने उत्तर दिया कि मैं विजित नहीं हूँ, न तो मैं अधीनता स्वीकार करता और न नौकरी करूंगा भले ही जान ले लो, तब राजा को विश्वास हुआ कि ठाकुर की इस हेकड़ी में मनुष्य का नहीं, यह तो स्थान का दोष है. फिर ठाकुर को कैद कर के बोश गांव की भूमि खुदवा दी और दूसरे किसानों में बांट दी और ठाकुर को दूसरे स्थान पर बसाया इसके बाद भलाए कोठी में तंदी के ठाकुर से

युद्ध हुआ, छोटे २ ठाकुर और प्रजाजन राजा और वजीरों से मिल गए, ठाकुर युद्ध में खेत रहा। उस के किले धर्मपुर और जमीरा थे, धर्मपुर को गिरा दिया गया तथा 'जमीरा' पर अपना पहरा बैठा दिया। उसके पश्चात सेंसर कोठी में जो तुछ ठाकुर हुल था उस के सगोत्र लोग गांव तलाहर में रहते थे वे आकर राजा से मिले और कहा कि यदि हमें अच्छा गुजारा मिले तो हम प्रजा को आप के अधीन करके ठाकुर को पकड़वा देंगे। और साथ ही यह भी सम्मति दी कि नीचे का रास्ता तो सेना ले जाने के लिए कठिन और असुरक्षित है इस लिए कोठी कनाउर से फागची के जोत से होकर सेना चढ़ाई और सेसर में जा कर ठाकुर से संग्राम किया, जिसमें ठाकुर हुल तो मारा गया - राज्य पर अधिकार किया उसके शरीकों को जागीरें दी इस प्रकार सारी रुपी अपने अधीन कर ली।

मकडाहर नाम के स्थान पर महल बना कर वहां नगर बसाया (यह स्थान बजौरा के दो किलोमीटर दक्षिण के सामने व्यास नदी के उस पार हुरला नाम गांव बताया जाता है) उस के पश्चात कोठी सेंसर के रास्ते सेना ले जाकर कोठी शांधड़ पर चढ़ाई की, वहां के दो तीन छोटे २ ठाकुर थे जो लड़ाई में मारे गये। बणोगी ठाणा भी जीत लिया, उन के परिवारों को गुजारे के अनुसार भूमि दी, फिर कोकोट के मार्ग से कोठी नुहांड़े पर आक्रमण कर के नुहांडा के ठाकुर को युद्ध कर के मार दिया और क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। फिर कोठी 'तुंग' में गए वहां के ठाकुर स्वयं आकर मिले और गुजारे के लिए कुछ भूमि लेकर राज्य राजा भादरसिंह को सोंप दिया और नौकरी भी स्वीकार की। तुंग के बाद व्याम(बराम) गढ़ में गए वहां के ठाकुर लड़ाई में मारे गए और सारा गढ़ अधिकार में आया। वहां से कोठी 'चौहणी' की ओर मुड़ें और वहां भी ठाकुर को मार कर प्रदेश काबू में किया - राजा भादर सिंह ने इतने ईलाके जीते। फिर इस के पीछे *राजा कल्याण सिह हुआ, उस ने राज भी कुछ थोड़े ही दिन किया और कोई प्रदेश भी नहीं जीता, फिर इस के पीछे राजा जगतसिंह हुआ और राज करता रहा। टिपरी के ब्राह्मण दुर्गादत्त के शरीकों ने राजा के पास चुगली की कि दुगादत्त के पास पथा भर मोती है। इस पर राजा ने अपने आदमी दुर्गादत्त के पास मोती मांगने के लिए भेजे पर दुर्गादत्त ने उन्हें यह कह कर कि मेरे पास मोती नहीं है वापिस लौटा दिया। फिर राजा मणिकर्ण को जाते हुए सरशाड़ी नाम के स्थान पर अटका और वहां से फिर आदमी टिपरी को भेजे कि वह मोती सीधे से दे देवें। तब दुर्गादत्त ने कहाला भेजा कि जब आप मणिकर्ण से लौट कर आओगे तो मोती हम दे देंगे। जब राजा मणिकर्ण से लौटते हुए टिपरी के सामने पहुँचा तो दुर्गादत्त कुटुम्ब सहित आग लगाकर मर गया।

---

*प्रमाणित वंशावली में किसी कल्याण सिह राजा का उल्लेख नहीं है, इस के बजाए भादर सिह की मृत्यु (१५६९ई०) के पश्चात प्रताप सिह (१५ वर्ष) पर्व सिह (३४ वर्ष) पृथी सिह (१७ वर्ष) और मान सिह प्रथम (२ वर्ष) राजा हुए, १६३७ में जगत सिह गद्दी पर बैठा।

जब राजा मकडाहर में पहुँचा और खाना खाने लगा तो भात मे कीड़ें दीखने लगे और पानी में रक्त, इस से राजा को बड़ा कष्ट हुआ। तब सुनने में आया कि सुकेत में कोई बड़ा करामाती ब्राह्मण है। फिर उसके पास आदमी भेजे, बड़ी कठिनाई से उसे मकडाहर पहुँचाया। तब राजा ने उसे कहा कि तुम हमारा इलाज करो। इस पर दामोदर ब्राह्मण रात को स्वप्न साधना में बैठा, उस के इष्ट ने बताया कि जब तुम अयोध्या में जा कर वहां से रघुनाथ जी को लाओगे और उन्हें यहां स्थापित करके राज उन को दे कर राजा छड़ी पकड़ेगा तब राजा का पाप जाएगा। तब दूसरे दिन जाग कर दामोदर ने स्वप्न का हाल सुनाया। फिर दामोदर साधु के रूप में अयोध्या में पहुंचा। दामोदर गुटका सिद्धि वाला था। यह वहां मन्दिर में पंडों के साथ कुछ काल तक अयोध्या में रहा; जब रघुनाथ जी उस के काबू में आए तो गुटका मुंह में रख कर हरिद्वार आ पहुंचा। उतने में पंडों को पता चला कि रघुनाथ जी यहां नहीं रहे तो पंडा भी गुटका सिद्धी द्वारा हरिद्वार आ पहुंचा, और दामोदर को पकड़ कर पूछा कि तुम ठाकुर को ले आए ? तो दामोदर ने उत्तर दिया कि रघुनाथ जी ने मुझे स्वप्न में कहा कि मुझे कुल्लू में राजा जगत सिंह के पास ले चलो, इस लिए मैं ले जा रहा हूँ, यदि मेरी बात झूठ होगी तो लो इन्हें तुम ले जाओ। इस पर पंडा उन्हें ले जाने लगा, परन्तु मूर्ति उस के जोर लगाने पर उठी नहीं, परन्तु दामोदर के उठाने पर तुरन्त उठ गई। तब पंडे ने कहा जब इनकी ही ऐसी इच्छा है तो तुम्हीं ले जाओ। तब इन्हें मकडाहर राजा के पास पहुँचाया, तब राजा ने अपना राज्य रघुनाथ जी को सौंप दिया और स्वयं छड़ी अर्थात चोबदार नौकर बन गया, इस समय राजा ने बहुत बड़ा यज्ञ किया और राजा का पाप दूर हुआ और गुसांई दामोदर को थति चौरासी खारी की जागीर माफी दी। भूइण में एक मंदिर बखशा। सरकार की ओर से मंदिर में प्रसाद चढ़ता था, कोठी जगत सुख का अन्न था वह रुपया चतुर्मास्य में धर्मार्थ लगा। नित्य एक रुपया और दो टका भेंट चड़ती थी, जो प्रतिवर्ष अयोध्या में जाती थी उसके पश्चात मंडी वालों के साथ मिलकर लग के राजा जोगन्द्र पर हंगामा किया। मंडी का जो राज था वह मंडी वाले ने लिया। राजा जगत सिंह ने वैर कोट, गरड़ धूला, गढ़ बूंगा-बढ गोपालपुर, कोठी पर्लाहच गढ़शकारी, तलोकपुर, फतेहपुर, जलोड़ी-जांचा लिए। फिर सनोर बदार, मदनपुरा, हाथी पुरा, सरग पुर, तारापुर, पसटारी इतने किले लिए। चुहारी का किला अंबर गढ़, हंसता पुर, देउगढ शरण में लिए।

फिर डूफीलग में राजा जोगचद के महल थे, और सुलतानपुर में जोगचन्द का छोटा भाई सुलतान चन्द अंदर के शहर में रहता था. उस के साथ ढालपुर के रास्ते हो कर युद्ध हुआ। वह बड़ा शुरवीर था, जब उस का सिर कट गया तब भी उस का धड़ लड़ता रहा और बहुत से आदमी उस ने मार गिराए। जब वह धड़ लड़ता हुआ पादुके (एक स्तूप जो अब भी है) तक पहुँचा और पादुके की टक्कर लगी तब वह कबंध गिर गया। फिर कुछ सेना गढ़ सारी की ओर और कुछ गढ़ शोभा की ओर गई। दो किले जीते और डुफीलग में राजा जोग चंद लड़ाई में मारा गया। उस के राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। मंडल गढ़, राएसरण, हुँरग गढ़ पर अधिकार किया। इतना प्रदेश राजा जगत सिंह ने लिया।

फिर राजा मकडाहर से उठा और रघुनाथ जी भी साथ ला कर सुलतानपुर में मंदिर बना कर स्थापित किए, और महल बनाया तथा शहर बसाया। इस के बाद राजा कभी सुलतानपुर में और कभी नगर के ठावा नाम स्थान में रहता था। वहां झोड़ी के बन में एक महापुरुष, साधु रहता था। ब्राह्मण कोठी के ब्राह्मण ने उसके होने का समाचार दिया। राजा साधु के पास पहुँचा तो साधु शेर बन बैठा परन्तु राजा डरा नहीं वरन् शेर के पांव पकड़ लिए, इस से वह बहुत प्रसन्न हुआ और राजा की पीठ पर पंजा मारा और फिर मनुज रूप में प्रकट हुआ, राजा को शिष्य बनाया कंठी (माला) दी और पूजा के लिए नृसिंह दिया (और कहा) तुम क्षत्रिय हो दो पक्षियों का मास नित्य दिया करो और प्रसाद तुम भी खाया करो, और एक वीती (प्रसाद की पत्तल) पर हमारा चेला बैठा करेगा, तब जगत सिंह को वचन दिया कि "आठ पीढ़ी मकदसा नौवीं पीढ़ी पंडोरी, उस के पीछे जो राज खाए रघुनाथ जी पर रखे डोरी" फिर राजा सराज को गया। नारायण गढ़, श्री गढ़, हिमरी ये क्षेत्र राजा सुकेत के थे, इन पर आक्रमण कर केतीनो गढ़ जीत लिए इतना प्रदेश राजा जगत सिंह ने लिया।

फिर राजा विधि सिंह ने बुशहर रियास्त के कोठी कोट कोठी ढौल कोठी कंदी राम गढ़ अपने आधीन किए, इस ने चंबा में व्याह किया, चंबा वालों ने लाहुल क्षेत्र दान में दिया।

उस के बाद राजा मान सिंह हुआ, मान सिंह ने पंद्रहबीस, डागा, बुचका, तगणेश, में किले बना कर गामू से सीमा नियत की। इसी काल में बंगाहल का राजा पृथ्वी पाल-जिसकी एक बहिन मान सिंह को और दूसरी मंडी के राजा को थी- मंडी वाली बहिन के घर गया हुआ था, वहां उस के बहनोई राजा ने मार दिया, और बंगाहल पर हम्ला बोल दिया। इस पर पृथी पाल की माता ने यह समाचार सुनते ही अपने दूसरे जामाता कुल्लू के राजा मान सिंह को पत्र लिखा कि मंडी वालों ने मेरा पुत्र मार डाला है अब हमारा राज्य छीनने के लिए चढ़ आया है, सो यदि तुम से कुछ हो सकता है तो तत्काल इस राज्य को सभाल लो, ज्यों ही मान सिंह को पत्र मिला उस समय वह 'गामू' में था, पत्र पढ़ते राजा ने सेना को हुक्म दिया कि प्रत्येक आदमी पांच दिन की रोटी अपने साथ बांध कर कूच करो। सेना एक दिन और एक रात में लारजी आ पहुंची। बाहर का गाहर भी अपने आधीन किया और फिर भीतरी गाहर भी जीत लिया वहाँ से रक्त गिरि, यदा कमला ही किला अपने कबजे में किए। वहां से देउले का परगणा, समसाल का परगणा बीड़ का परगणा भी अपने आधीन किए। कर्ण पुर, शाह पुर, शमशेर पुर ये किले मंडी वाले ने लिए। मंडी वालों के साथ बीड़ में सीमा निर्धारित की।

वहां से सुलतान पुर लौट आया। फिर लाहुल के रास्ते हो कर लदाख को गया बारालाचा में सीमा रखी। पित्ती में आया, पित्ती वालों से नजराना लेकर सदा के लिए नजराना नियत किया। वहां से सुलतान पुर लौट आए कुछ काल के अनंतर सतलुज नदी के पार सांगरी की

ठाकरी (ठकुराई) अपने आधीन की वहां के ठाकुर को थोड़ी सी जागीर दी, कांगल में किला बनाया वहां की आंय में से किलेदारों का खर्च रखकर १०० रू० सरकार से लेते थे। श्रीहरिकोट में किला बनाया। होमी लाजनी, राय कर्ण, बाधी किले बनाए। कोटकरू(कोटगढ़) कुम्हारसगु बलासगु, कारगलू से देख देख कर(यथाशक्ति) नजराना लेते थे। फिर मंडी वालों ने गरड़धूला, मदनपुर, बसटारी और तारापुर पर आक्रमण किया। तब राजा मान सिह युद्ध में स्वयं चढ़ा और मंडी वालों को भगा दिया गूमा और दरंग में नमक तुलाई के लिए तराजू लगाया, और फागसी को भी लूटते गए, परन्तु फागसी धार में बड़ी घोर वर्षा हुई, जहां उन्हें रुकना पड़ा इस पर मण्डी वालों ने इस आक्रमण को हटाने के लिए एक चाल चली, राजा को रुपये दिए और राजा वापिस आ गया। जो सीमाएं बांधी गई थी वे उसी तरह रहने दी गई। फिर राजा ने सराज के पीछे रठोह नाम के स्थान पर महल बनाया, जिससे सतलुज के पार वाले जीते हुए क्षेत्रों पर नजर रह सके।

कुम्हारसगु वाले की जो स्त्री थी उस के साथ राजा मानसिंह की दोस्ती लगी, इसलिए उस ओर के हरिकोट किले की तरफ देखने के लिए राजा गया हुआ था। तब कम्हारसग वाले ने बुशहरों के साथ मिलकर एक रात में बुशहरों की फौज ले आए. रास्ते में एक भरली नाम के वन फौज को छिपा रखा, जब राजा सिहरी कोट से रठोह के लिए लौट रहा था तब कुछ फौज राजा के आगे आई और कुछ राजा के साथ रही, राजा के साथ आदमी थोड़े ही थे अत: बुशहर की फौज राजे के ऊपर आ पड़ी, राजा खेत हुआ।

फिर राज सिंह गद्दी पर बैठा। तब रायकर्ण-होसी लाजनी, बाधी इन सब किलों के ठाकुरों ने बुशहर की सहायता से राजा के पहरे उठा दिए और अपने बैठा दिए और मलुक राजा राजसिंह ने लिया उस पर अपना शासन बैठाया।

फिर राजा जयसिंह गद्दी पर बैठा, उस ने प्रतापपुर (जिया) में महल बनाया। उस का वजीर भारीकलु था, उस पर कुपित होकर उसे देश से निकाल दिया। केपू से ऊपर की ओर किरटी नाम के गांव में बह जा बसा। उसने कुल्लू की प्रजा से मिलकर विद्रोह खड़ा कर दिया। राजा के साथ के कारमुख्तार लोगों को पकड़ कर सोउड़ पुल पर से गिरा दिए। इस से राजा बहुत उदास हुआ।

फिर राजा लाहौर को गया, पांच सौ नौकर और भलेमानस साथ गए। साथ में एक वैश्या भी (कंजरी) जो राजा की विश्वास पात्र थी साथ में लाहौर पहुंची। श्री(वहारा ?) छः हजार रुपयों के कारण मण्डी वाले ने चुहारी का तलुका, अंवरगढ़, देवगढ, हसतपुर, सरनी पर मण्डी वाले ने अपने पहरे बिठाए और चुहारी प्रदेश मण्डी के अधिकार में गया।

राजा जयसिंह देखने में बहुत सुंदर था। बादशाह राजा के सौंदर्य पर मुग्ध हुआ और मेहरबान भी. बड़ी खिलकत (खिलअत) बख्सी, और विद्रोह दबाने के लिए सेना भी नियुक्त की। इसी बीच बादशाह की शाहजादी की नजर पर्दे में से ही जयसिंह पर पड़ी और वह दिल दे बैठी। यह बात बेगम ने बादशाह से कही. बादशाह ने गुप्त संदेश भेज कर राजा को कहा कि यदि तुम यह प्रस्ताव (शाहजादी को स्वीकार करने का) मानते हो तो तुम्हारे सारे काम बन जाएंगे। राजा यह बात सुन कर बहुत घबराया. अपने सलाहकारों के साथ मंत्रणा की। और ४०-५० आदमी अपने साथ लिए और उसी समय (भेस) बदल कर वह लाहौर से भाग खड़ा हुआ। साथ का कुछ सामान साथ लेकर कुछ विश्वासी जनों को सौंप दिया जो अपने चाचे के लड़के टेढ़ी सिंह के पास कांगड़े के जयसिंहपुर को भेज दिया। टेढ़ीसिंह अपने अपने मामा के घर रहता था। राजा ने कागज पर यह भी आदेश टेढ़ीसिंह को लिख दिया कि कुल्लू की राज गद्दी तुम को देता हूं, हम ने तीर्थ यात्रा करनी है साथ ही प्रजा के नाम भी संदेश लिख भेजा कि तुम को राजा टेढ़ीसिंह भेज रहा हूं। अपने हरमखाना (रनिवास) को भी लिख भेजा कि मैंने राज टेढ़ीसिंह को दिया है यह तुम्हारी टहल सेवा और सम्मान करेगा. और स्वयं राजा जयसिंह अयोध्या में जाकर राम दरबार में रहा. वहां एक बाग लगाया और श्री रघुनाथ जी के चरणों में तप करने लगा। जो लोग सामान लेकर कुल्लु लौट रहे थे वे जब जयसिंहपुर पहुंचे और जयसिंह का सामान और पत्र टेढ़ीसिंह को दिए. तब टेढ़ी सिंह कुल्लू पहुँचा और राजगद्दी पर बैठा - परन्तु प्रजाजन उसे सहयोग नहीं दे रहे थे।

(तब परम्परा सी बन गई थी कि) बैरागी साधुओं की जमातें (जत्थे) मणिकर्ण, त्रिलोकनाथ आदि तीर्थों की यात्रा या चातुर्मास्य करने के लिए इधर आते थे, उन्हें राज्य और मंदिर से खाना पीना दिया जाता था और बड़ा सम्मान किया जाता था। ऐसी ही टोली जब आई हुई थी और उन्होंने प्रजा के तेवर और राजा की असमर्थता से वैष्णव गद्दी को खतरा देखा तो राजा का आग्रह मानकर यहीं रुक गए साथ ही आदमी भेज कर बहुत से बैरागी साधू और भी बुला लिए। और उन में से बहुत से नौकर (सैनिक) भी रख लिए जिन के प्रभाव से देश में सुधार हुआ (विद्रोह दब गया)। राज्य में जो उपद्रवी लोग थे उन की पहचान के लिए उन के एक एक कान में लोहे का और दूसरे में चांदी के कोकले डलवाए।

इस के कुछ काल के पश्चात् वह जो कंजरी राजा के साथ लाहौर तक गई थी (राजा के सन्यास ले लेने से वह लोटती हुई मण्डी पहुँची तो मण्डी वालों ने वैश्या को विश्वास में लेकर षड्यन्त्र रचा. एक सन्यासी राजा जयसिंह जैसे रुप रंग और आयु का था, को सिखा समझा कर नकली जयसिंह बनाया। वह जो वैश्या थी वह राज दरबार के प्रायः सभी लोगों को काफी जानती पहचानती थी और साथ में लाहौर जाने वालों व उन के कार्य कलापों से भी परिचित थी। उसने तदनुसार सन्यासी को प्रशिक्षण दिया। तब मण्डी राज्य वालों ने ३००

आदमी साथ देकर सन्यासी को वैश्या के साथ प्रजा को बहकाने के लिए भेजा। यह टोली मण्डी से नचारणी (नाचरणी) की वजीरी पंडोह से मण्डी सराज कुल्लू सराज में (शिविर करती हुई) नवाई नामक स्थान में जा पहुँचे। वह सन्यासी उस वैश्या को अपने तंबू के भीतर पर्दे में रखता था। वह नेगी या प्रजा जनों को पहचान कर परिचय बनाती. उस के अनुसार साधु बात करता था। वह कहता मैं राजा जयसिंह हूं अब मैं परदेश से लौट आया हूँ (टेढ़ीसिंह ने मेरा राज्य हड़पने का षड़यन्त्र किया) आदि इस प्रकार लोगों को भड़काने से लोग भी उन के साथ उन्हें सच मानकर चल पड़े। बताइ से पलाहिच, वहां से परिणहार, सैंज भलाण और पांचवें दिन दयार पहुँचे।

राजा टेढ़ी सिंह को पहिले पता लगा था कि मंडी वालों ने कोई बड़ा बखेड़ा खड़ा किया है. फल स्वरूप उसने प्रजाजनों में घोषणाएं भी की कि यह जय सिंह नहीं है। बल्कि शत्रुओं की चालाकी व शरारत है, परंतु लोगों को विश्वास नहीं हुआ कि कदाचित टेढ़ी सिंह अपने प्रभुत्व को बचाने के लिए ऐसा न कहता हो।

उतने में जो लोग जै सिंह के साथ लाहोर से अयोध्या गए थे वे लोग टेढ़ी सिंह के समक्ष आ पहुंचे और उन्होंने अपना समाचार सुनाया कि राजा जय सिंह को सीता (शीतला) माई का रोग हुआ और वह पूरा हो गया। आधे आदमी अस्थियां लेकर हरिद्वार गए हैं और आधे हम क्रिया कर्म करने के लिए यहां आ गए हैं। तब राजा टेढ़ी सिंह ने उन लोगों में से पुरोहित जींदा और कायथ श्याम तथा कुछ और प्रतिष्ठित व्यक्ति दियार को भेजे कि वे प्रजाजनों को तथ्य से अवगत कराएं. और वे लोग तत्काल दियार को चले गए वहां उन्होंने लोगों को सारी परिस्थिति बताई तो लोगों को विश्वास आने लगा कि सचमुच यह मंडी वालों ने शरारत की होगी। तब प्रजा ने पुरोहित और कायथ से कहा कि वे उनके सामने चल कर बात करें। तब वे सन्यासी के पास गए उस के पीछे पर्दे में वह कंजरी बैठी थी उसने समझाया कि एक जींदा पुरोहित और कायथ श्याम है। जब वे लोग पास पहुंचे तो नकली जय सिंह ने सब के नाम लेकर यथोचित व्यवहार किया। जनता भी इन लोगों के पीछे बैठ गई। उन्होंने पूछा 'तू कौन है? सन्यासी ने कहा तुम नहीं पहचानते कि मैं राजा जय सिंह हूं। ऐसी नमक हरामी की बात क्यों करते हो? तब पुरोहित और कायथ ने पूछा कि यदि तू सचमुच जय सिंह है तो बता जब लाहौर से भागा था तब तुम्हारे साथ कौन कौन आदमी थे। किस किस जगह में पड़ाव किया और क्या आभूषण अपने साथ थे। तब सन्यासी ने कहा कि मुझे स्मरण नहीं रहा हम भूल गए। जब इतनी बात लोगों ने सुनी तो पुरोहित और कायथ को पीछे (करके) प्रजा ने तलवार पकड़ी, बड़ी लड़ाई हुई। मंडी वाले भी मरे और सन्यासी तथा कंजरी भी। और मारते मारते हाट के पत्तन तक पहुंचाए फिर प्रजाजन सुलतानपुर में राजा टेढ़ी सिंह के पास आए।

फिर राजा जय सिंह का जो रनिवास था, वह हरम खाना (रनियां-बांदियां) सब राजा जय सिंह के सेहरे-कटारे के साथ सहगामी (सती) हुआ। फिर टेढ़ी सिंह अपना राज्य करने लगा।

टेढ़ी सिंह के रानी (यों) से अठारह राजकुमार हुए परन्तु कोई जीवित नहीं रहा, और जो ख्वास (उपरानी) थी उस के साथ तीन पुत्र प्रीतम सिंह, चरण सिंह प्रेम सिंह। इस के कुछ एक कालोपराँत राज टेढ़ी सिंह समाप्त हुआ।

उस के पीछे राजा प्रीतम सिंह गद्दी पर बैठा- राज करता रहा। फिर उस ने मंडी वालों से युद्ध करके चुहारी के क्षेत्र देआढ़, सरनी, हस्नपुर, अंबर गढ़ का अपना क्षेत्र छीन लिया और अपना अधिकार किया और अपना तंत्र चलाया, और सतलुज पार जो ठाकुरराणे थे उन से पिछली संधियों के अनुसार नजराना लेता रहा। जब प्रीतम सिंह समाप्त हुआ तो गद्दी पर विक्रम सिंह बैठा। उस के कुछ कालोपरांत कंपनी बहादुर (ईस्ट इंडिया कंपनी) का पत्र आया कि 'हमने गोरखों पर आक्रमण किया है तुम हमारी सहायता करने के लिए सेना भेजो, तब राजा विक्रम सिंह ने सेना भेजी। वजीर मनी राम और झगड़ू सेना के कमान अफसर भेजे। तब कम्पनी के मोर्चे राजगढ़ पर लगे हुए थे। उस गढ़ में गोरखा सेना के साथ अमर सिंह और भगतिया थापा सरदार थे। वहीं कुल्लू की सेना पहुँची। बड़ी लड़ाई हुई, कम्पनी बहादुर ने भगतिया थापा मार दिया। युद्ध जीत लिया, और साहब लोक ने बजीर मनीराम और झगड़ू को आज्ञा दी कि पहाड़ों में जो गोरखा सेना है उसे निकाल दो। तदनुसार वे पहाड़ियों की ओर मुड़े और जहां कहीं गोरखे थे वे (कढ़ी या कटी) काट दिए, शस्त्र छीन लिए। कांगल (शांगरी के किलाल राजा ने अपना पहरा बैठाया हबू कराणे वाघी में अपना अधिकार किया और सेना कुछ काल तक वहीं रही। जब साहब लोग नीचे से आए तो आदेश हुआ कि शांगरी की ठाकर पीछे की भांति राजा साहब को बख्शी गई और सीला जनी, हबू, कराणा,व ाघी में जो तुम्हारे पहरे हैं उन्हें खाली कर दो, इन पर कम्पनी का पहरा रहेगा और तुम को लड़ाई का खर्च मिल जाएगा। तदनुसार खर्च की राशि भी राजा के पास भेजी और नेक नामी का प्रमाण पत्र भी दिया। तब वजीर मनीराम और झगड़ू सेना सहित लौट आए, शांगरी और कांगड़ राजे के अधिकार में रहे।

फिर दूसरे वर्ष के पश्चात मंडी ने चुहारी पर आक्रमण किया, देउगढ़, सरनी, हस्नपुर मंडी वालों ने कुल्लू से छीन लिए, फिर अमर गढ़ पर मंडी ने हंगामा किया, परन्तु पेश नहीं गई और बहुत सी फौज मारी गई। राजकुल के दो मियें बालक सिंह और रामसिंह भी कुल्लू वालों ने मार दिए फौज भगा दी और मंडी वाले घनों को लौट गए।

फिर कुछ काल के बाद सिंघों का दीवान कुवां मामला (कर) लेने के लिए कुल्लू पर चढ़ आया और चालीस हजार मामला लेकर लौट गया, उस के तीसरे वर्ष में सिंघों के आदमी कर लेने के लिए भंगाहल में आए थे, इस पर राजा विक्रम सिंह ने उज्र (इन्कार) किया, इस से रुष्ट होकर रणजीत सिंह ने दीवान मोहकमचंद को बड़ी सेना लेकर भेजा जिस में चम्बा, गुलेर, कांगड़ा जम्मू, बसोहली बलाडर की सेना भी अपने साथ लाया था। चम्बे का वजीर नत्थू और...

का राजा गुलेरिया राजा व कटोच वजीर नरंग और जम्मू व सुकेत मंडी के राजे भी अपने साथ लाया वजीरा में आकर सेना बैठी वहां मामले की बात चली। वजीर कर्म दास और सोभाराम यह निश्चय करके राजा के पास आए तो राजा ने नेगी आड़ू, जो राजा का विश्वासी था उसे प्रजा की राय जानने के लिए भेजा कि आप लोगों की क्या सम्मति है, मामला दिया जाए या लड़ाई की जाए? लोगों ने आड़ू नेगी के पास उत्तर दिया कि पंचों का मामला देने वाला फैसला न मानकर हम युद्ध करेंगे। उस समय वजीर और मुसद्दी राजा को कहते रहे कि दीवान के साथ डेढ लाख सेना है और फिर सारे राजे भी साथ में हैं, तेरी पाँच हजार सेना की उन के साथ क्या पेश चलेगी, परन्तु राजा नहीं माना अकड़ गया। दूसरे दिन सिंघों की सेना चढ़ आई, कुल्लू वाले सब भगा दिए राजा महल से भाग कर भेखली धार में चढ़ गया, फौज शहर में पहुँची, पुराने महलों को आग लगा कर भस्म कर दिया, शहर के कोठी भंडार भी सिंघों ने लूट लिए। जब राजा भेखली पहुंचा तो शत्रु सेना ने भी पीछा किया। तब राजा ने वजीर मुसद्दियों को बुला कर कहा कि किसी प्रकार फौज को पीछे हटवाओ, जो मामला मांगते हैं वह भी दो, तब वजीर सोभाराम, कर्मदास, जगत रास, गेहरू, राम सहाय, मोतू कायथ, राम दास, सीसू, वकील मनीराम, भीमीराम ब्राह्मण भीजू, गुलेरिया मियां झगड़ू ये भले माणस फौज के आगे किए.. भेज दिए। स्वंय राजा जंगलो से होकर द्काड़े के रास्ते पुराने कुल्लू (नगर) पहुँचा। तब १००००० रपैया सब सरदारों राजे की (गुम लगी ?) २००००० मामला (चुकया) निश्चय हुआ। १०००००० रु० की शहर में लूट हुई। इसी बीच १००००० रोकड़ शहर में दिया और एक १००००० की महंत लाइची गिर ने जमानत मानी, जिसके बदले में कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति मंहत के पास गहने (बंधक) रखे, जिन्हें महंत अपने साथ मंडी ले गया। जब रुपया चुकाया गया तब वे लोग घरों को लौटे।

कुछ समय उपरांत राजा विक्रम सिंह बीमार हुआ। तब उसनें वजीर मुसद्दी, प्रजाजन नेगी भाइचारे के मीएं और महंत बैरागी पंडित पुरोहित सब इकट्ठे किए। छोटा भाई किशन सिंह भी पास बुलाया और अपना पुत्र जीत सिंह अपने पास बैठाया। तब राजा ने मियां किशन सिंह से कहा कि मुझे इस बीमारी से बचनें की आशा नहीं रही है, अतः यदि मेरा देहांत हो जाए तो राज तेरा ही है। यह जीत सिंह मेरा लड़का तेरी गोद में है। तब किशन सिंह ने अर्ज की कि मेरी शकल और सामर्थ्य तो आप जानते ही हैं कि मैं राज नहीं कर सकता। राज तिलक मेरे भतीजे जीत सिंह को दो, तब सारी खलकत मिएं मियाणे प्रजा नेगी और भले आदमियों ने भी जीत सिंह को टीका लगाया तथा राज गद्दी करने का निश्चय किया। फिर शुभ मुहूर्त में श्री रघुनाथ जी के मंदिर में गए सारी खलकत और प्रतिष्ठत आदमी भी वहां एकत्र हुए। सर्व प्रथम श्री रघुनाथ जी की ओर से गुसाईं राम लाल ने राज तिलक दिया। फिर राजा विक्रम सिंह ने किशन सिंह के टीका लगाया मियां कपूर सिंह, पुरोहित, महंत, वजीर मुसद्दी नेगी और प्रजाजनों ने जीत सिंह को तिलक लगाया। फिर विक्रम सिंह ने जीत सिंह की बांह सब से पकड़वाई।

कुछेक दिनों के पश्चात विक्रम सिंह का देहांत हो गया। उस का सोग (शोक) भनगे (समाप्ति) की रस्म के लिए मंडी सुकेत और कांगड़े को सूचना भेजी। तब इस (दस्तारबंदी-हींग) रस्म के लिए मंडी का राजा ईसरीसेन स्वयं सुलतान पुर में आया। शोक समाप्ति करके दूसरे तीसरे दिन राजा ईसरी सेन ने अपनी मर्यादा के अनुसार चौरी मुठा और गद्दी दी, मुठा स्वयं किया (मुठा मोरछल को कहते हैं जिसे राजा पर ही झुलाया जाता था)। सुकेत का वजीर भी गद्दी चंवर और मुठा लेकर उपस्थित था उस ने भी सुकेत राज्य की ओर से रस्म की। यहां का नियम यह था कि पहला चौरी मुठा और गद्दी कटोचों (कांगड़ा) से लेते थे। जब राजा ईसरीसेन चला गया तो राजा संसार चंद ने वचीर नरंग और पुरोहित सामान गद्दी का लेकर कुल्लू को भेज दिये थे, पीछे संसार चंद को खबर मिली कि पहला मुठा मंडी वाले कर गए उसी समय उसने हाजरी (धावक) भेजकर सारा समान और टोली वापिस बुला लिए बड़ा अपमान और ईर्षा का भाव हुआ।

विक्रम सिंह की मृत्यु के दौरान वजीर केशव राम और वजीर सोभा राम में परस्पर द्वेष था, सोभा राम ने जीत सिंह के आदेश से अपने भाई केशव राम को वैरकोट में भेज कर मरवा दिया। केशव राम के परिवारियों ने बदले को भावना रखी, उन्होंने मंत्रणा की कि राजा जीत सिंह के ऊपर सोभा राम के छाए रहने से हमारी कोई पेश चलेगी नहीं, इस लिए उन्होंने किशन सिंह को उकसाया, उसका नाम लेकर राजा संसार चंद से सहायता मांगी, संसार चंद ने कहा पहले किशन सिंह को मेरे समक्ष लाओ। तब वे षड्यंत्री रातो रात किशन सिंह को संसार चंद के पास ले गए। तब संसार चंद ने किशन सिंह के साथ अपनी फौज भेजी। किशन सिंह का परिवार कांगड़े में रजगीरी (रजेह ड़) दी वजीरी भ्रमण के गांव में है। जब सेना कुल्लू में प्रविष्ट हुई तो राजा जीत सिंह मंडी राज्य के सनोर क्षेत्र के कोटाधार गांव में जा छिपा। वहां उसने दस बारह हजार सेना तैयार की और मंड्याल (मंडीवाले) व सखेतड़ (सुकेत वाले) सेनाएं लेकर सहायता को आए, कुलरिए (कल्हूरिए-बिलासपुर) मानु आ लिए ? (मान्सवालिए) तथा जसवाल (जसवां-अम्ब) की सेनाएं भी पहुँची। कुछ फौज सारी भुभु (मव्वू)का रास्ता रोकने के लिए चुहारी के रास्ते से आई और स्वयं मण्डी के राजा इसरी सेन के साथ राजा जीतसिंह भी बजौरे में इकट्ठे हुए। उस समय महंत मनीगिर भी लाहौर में था, उस ने भी रणजोतसिंह से अर्ज की, लाहौर से राजा मण्डी को परवाना आया कि तुम कुल्लु वालो की सहायता करो तब तक दूसरे राजे भी चढ़ाई कर के कुल्लू शहर तक पहुँचे. किशन सिंह की फौज भाग गई, किशन सिंह भी भाग गया, तबसरी भुभु वसटारी के रास्ते फौज आई, इधर से भी फौज लग के नाले में गई सारी के नाले में 'गोरू डुघ' नाम के स्थान पर किशन सिंह पकड़ा गया और दूसरे कर्मचारी व भले मानस भी पकड़ लिए गए। कटोच सेना जो किशन सिंह के साथ थी, उन के शस्त्र वस्त्र लूट लिए और उन्हें छोड़ दिया और किशन सिंह के साथ के जो शरीक लोग थे उन ६० जनों को (ममर?) के पास फांसी पर चढ़ा दिया। गोसाई प्रधान गिर को राजा ईसरी सेन ने मंगवा लिया और अपने साथ मण्डी ले गया। जो चुहारी का किला-अमरगढ़ राजा कुल्लू के थे वे सारे क्षेत्र सहित राज मण्डी ने मांग लिए।

उस के साल भर बाद जो किशन की पत्नी दरमाणी (द्रमणकी) थी उसे पता लगा कि किशन पकड़ा गया है अब हम किस प्रकार जएंगे। वजीर ईसस मियां (भेख पडडु भुण) करडाई (कटराई) से गुसांई प्रधान गिर ब्राह्मण अन्दरा भगतु मंगाहली राजपूत गेहरू इन सबने मंत्रणा की। एक ब्राह्मणी दरमाणी के पास थी। राजपूत गेहरु की स्त्री भी गर्भवती थी। मंत्रणा के अनुसार सब ओर चर्चा फैलाई गई कि किशन सिंह की स्त्री भी गर्भवती है। योजना यह थी कि यदि ब्राह्मणी के पुत्र हुआ तो वह दरमाणि गोद लेगी अन्यथा गेहरु ने कहा कि मेरे पुत्र होगा तो मैं ब्राह्मणी की कन्या लेकर पुत्र को दरमाणि की गोद में दूंगा। फिर गेहरु के पुत्र हुआ जो ब्राह्मणी की कन्या के बदले दरमाणी की गोद दिया। उस का मूल्य गेहरु को ५०० रु० देने का वचन था जो पूरा नहीं हुआ क्योंकि गेहरु ने वह कन्या मार डाली थी। तब रुष्ट होकर गेहरु ने भेद खोल दया कि लड़का मेरा है। तब उन्होंने गेहरु को रूपया देने के बहाने घर बुला कर मार डाला। यह काम तीन जनों ने किया। इस बात को कांगड़ें में सब जानते हैं। गेहरु का पुत्र राम दास भी जानता है। बाकी जो मण्डी का राजा बलवीर सेन को पकड़ ले। सरदार जीतसिंह कुल्लू पर चढ़ आया। जब वे बैजनाथ पहुंचे तो राजा जीत सिंह ने मंहत मनीगिर को सरदार के पास भेजा कि ठीक पता करो कि यह मामला (कर) लेने आया है या मण्डी की भांति इलाका लेने की इच्छा है ताकि तदनुसार प्रबन्ध किया जा सके। मनीगिर ने सरदार से यह प्रश्न किया तो उत्तर मिला कि हमने मामला ही लेना है राज्य नहीं लेना है। मनीगिर और सरदार में यह बात तय हुई और मनीगिर ने यह बात पत्र लिखकर कुल्लू भेजी कि मामला लेने के लिए सरदार कुल्लू आ रहा है और मैं भी साथ आ रहा हूं। कुल्लू पहुँच कर सरदार ने राजा को रघुनाथ जी के मंदिर में बुलाया कि वहीं वचन पक्का करेंगे। जब राजा मन्दिर में गया तो पहले वचन (विश्वास) किया और तत्काल ही राजा को पकड़ लिया और अपने शिविर में ले गए और पहरे डाल दिए, तथा कहा कि तुम अपने किले वेरकोट, तारापुर-हाथीपुर-वसटागी मदनपुरी-रामगढ़, गरड़खूला व मंगाल के किलो को अपने आदमी भेज कर खाली करा दो वहां हमारे पहरे होंगे जब ये किले खाली होंगे तब तुम्हें छोड़ दिया जाएगा। जब ऊपर किले खाली हो गए तब कहा कि सराज के किले भी खाली करा दो। फिर राजा ने सराज को आदमी भेजे, धन सुपुर्द किया। पहरे में डाल कर भेजा। जब सराज के किले खाली किए और रठौह जाकर डेरा डाला। इस दौरान राजा (वजीर कपूरू सतलुज पार कंपनी के क्षेत्र में केपू स्थान में था, वह सराज का वजीर था।) राजा ने कपूरू को कह भेजा कि हमने किले भी छोड़ दिए। राज्य पर सिंघों ने कब्जा कर लिया है फिर भी मुझे पहरे में रखा है। यदि तुम से कुछ हो सकता है तो लोगों को समझा कर मुझे छुड़ा लो, मुझे तो किसी से मिलने नहीं देते।

तब कपूरू ने प्रजा को यह समाचार बता कर योजना बनाई, वशलेऊ पर्वत से इस ओर तुंग नाम के गांव में आस पास की घाटियों में फौज छिपा रखी। जब सिंघों की फौज उधर

से गुजर रही थी उस समय लोगों ने सेना से निकल कर आक्रमण करके राजा को छुड़ा लिया। बंदूक तलवार भी चली। जो कुछ सिंघों के आदमी बच रहे थे वे भी घेर लिए। दूसरे दिन जब वे लोग घेराव से भागने लगे तो देहूरी नाम स्थान में वे सब भी मार दिए। किले कोटों पर नियुक्त जिन सिंघों ने शस्त्र छोड़ दिए उन्हें मुक्त कर दिया, और जो डाक आदि पर कहीं भी थे वहीं मार दिए और राजा जीतसिंह कंपनी अधिकृत क्षेत्र केपू में चला गया। वहां से राजा ने सभी वजीरों को पत्र लिखे कि कुल्लू राज महलों में मेरी रानियां सपरिवार हैं उन्हें छुड़ाने का प्रबन्ध करो, सिंघों को मार दो।

आधे रूपी वाले और कुछ सराजी मनाली बड़ागढ़ व लगसारी के लोग भेखली धार मे इकट्ठे थे, और परोल रूपी के तथा आधे सराजी व लाहुली फौज बंदल गांव में थी, आधे सराजी रुपयाल और लग महाराजा के लोग गड़गाजरण में जमा थे। फिर तीनों ओर से सिंघों पर हल्ला किया दो अढ़ाई सौ सिंघ खत्म किए और कुल्लू वालों की पेश नहीं गई। सिंघों का अधिकार राज्य पर अच्छी तरह नहीं जमा, लूटपाट होती रही और राजा केपू में ही रहा।

तब केपू से ही बलाकी वजीर को वकील बना कर लाहौर को भेजा। लाहौर में राजा ध्यान सिंह के माध्यम से महाराजा शेर सिंह के आगे हाजिर हुआ। राजा ध्यान सिंह ने १०७००० रुपये नजराने की मामले सहित बात पक्की की। राजा ध्यान सिंह का विश्वास वजीर गणेशा बलाकी के साथ केपू को आया, पत्र परवाना भी उस के पास दिया और समझा दिया कि पत्र के अनुसार राजा जीतसिंह मामला आदि का लेन देन करेगा. और तुमने उसे कुल्लू ले जाना और फौज भी उठा लेनी। तब गणेशा और बलाकी छावे के रास्ते होकर सीम्बले(शिमला)के बीच में से राजा के पास केपू में पहुँचे। उन दिनों राजा बीमार हो गये।

उसी काल में जो रानियां कुल्लू महल में सिंघों के पहरे में थी, उन्हें सुरंग द्वारा निकाल कर केपू के लिए रवाना कर दिया। जब ये केपू में पहुची तो राजा का क्रिया कर्म और्द्ध दैहिकी की जा रही थी।

इतने में राजा ध्यान सिंह की कमान बदल गई और लेहणा सिंह की कमान पहाड़ों से होकर आई। जब वह बजौरा में पहुँचा तो राजा जीतसिंह की मृत्यु का समाचार सुनकर बहुत दुःखी हुआ। तब सरदार लेहणा सिंह कुल्लू के प्रतिष्ठित जनों को पूछने लगा कि अब जीतसिंह की मृत्यु हो जाने पर इस वंश का कौन आदमी होगा जिसे राज दिया जाय। तब गुसाईं सुखराम गिर ने कहा कि आप के साथ जो यह प्रताप सिंह नाम का नौकर है यह कैसा है? तब सरदार ने कहा कि गुसाईं जी आप यह बात मत कहिए, यह तो भंगाहली राजपूत का लड़का है इस की छानबीन दो तीन बार हो चुकी है, इस का हक नहीं पहुंचता, उस समय प्रतापसिंह भी सरदार की कचहरी में

था। तब गुसाईं मुखराम गिर ने सरदार से अर्ज की कि आप शहर (सुल्तानपुर) चलिए, वहां सारी बिरादरी होगी। फिर सरदार शहर पहुंचा, यहां लैहणा सिंह ने सभी भले मानसों वजीर गेहरू (मोलड़) खुसाईं मखराम गिर कायथ गवरधन (सेरूआ) महंत साउल दास ऊधोदास सब नेगी और प्रजाजन पूछे कि यहां सभी राजकुल के लोगों को बुलाओ। यहां की राजगद्दी के योग्य कौन है ? तब सभी ने कहां कि योग्य तो ठाकुर सिंह ही है परन्तु वह तो कम्पनी के क्षेत्र केपू में है हां दूसरे सभी शरीक यहां है उन्है हम हाजिर करते है। तब मियां कसाला, फतु टीकमे राम भोले राम सरदार के सामने प्रस्तुत किए. परन्तु देखकर उसने पसन्द नहीं किए। उनको गुजारे के लिए जागीरें देने की बात कही।

फिर सरदार ने फरमाया कि तुम सब ठाकुर सिंह को लिखो, उसे बुलाओ उसे हम राजगद्दी देंगे। राजा जीतसिंह की रानी को भी लिखो, उन को भी जगीर देंगे। ठाकुर सिंह और रानी को लाने के लिए सरदार ने अपने वजीर मियां सिह केपू को भेजा, हिदायत की कि इन्हें कुल्लू को ले आओ। वहां जाकर मियां सिह तो सतलुज के इस पार खेखसू में रहा और अपने आदमी पार केपू भेजे - और संदेश दिया कि मेरे कहने पर आप आ जाओ ठाकुर सिंह को गद्दी और रानी को जागीर दी जाएगी। यह बात कपूरू वजीर को पसन्द नहीं थी उसने कहला भेजा कि हम नहीं आते। तब मियां सिंह को अपना आदमी ज्ञान सिंह गुप्त रूप से ठाकुर सिंह वजीर बलाकी और गौरी दत्त के पास कपूरू की नजर बचा कर मिला, कहा कि कपूरू को यहीं रहने दो तुम तीन जन आओ। तब बलाकी और गौरी दत्त गुप्त रूप से मियां सिह के पास खेखसू आए बलाकी ने कहा कि हम तो आएंगे परन्तु कपूरू की इच्छा ठाकुर सिंह के लिए नहीं है इसने रानी को भी भरमाया हुआ हैं। उसे कहा है कि यदि ठाकुर सिंह राजा बना तो तुम्हारा क्या रह जाएगा। कपूरू की इच्छा मियां झगड़ सिह का लड़का जो बीस दिन का है उस को गद्दी देकर रानी की गोद देने का है कि देश मेरे अधीन रहे इस का मन्सूबा है कि यहां गद्दी देकर ऊपर ही राजा ध्यान सिंह के पास आदमी भेजेगा। कमान ध्यान सिंह की (कणी) तुम्हारे माध्यम से कोई बात नहीं मानता तब मियां ने बलाकी व गौरी दत्त को कहा कि तुम जा कर कहो कि हम यह बात सरदार लैहणा सिंह से कहेंगे। तब मियां सिंह वापिस कुल्लू आया। सारा हाल सरदार लैहणा सिंह को बताया। वह कपूरू पर बहुत रूष्ट हुआ।

सराज का इलाका राजा बलवीर सैन को इकत्तीस हजार रुपये दिए। किले में अपने पहरे रखे, ठाणा खेखसू में बनाया, रूपी (उप्रला) दोनों लग, लाहुल थानेदार कानूगोए कान्हे के सुपुर्द किए। मंगाहल की वजीरी मियां लता सिंह को दी। सरदार लैहणा सिंह ने अपना सिपाही ज्ञान सिंह चुपके से ठाकर सिंह बलाकी और गौरी दत्त के पास भेज कर कहा कि हम लाहौर को जा रहे हैं - वहां तुम्हारी अर्ज बादशाह शेर सिंह के पास करेंगे, जब बादशाह कपूरू को बुलाएगा तब तुम भी चले आना। ऐसा बंदोबस्त करके सरदार लाहौर को चला गया।

इधर कपूरू ने मियां झगड़ू का लड़का रानी के पास लाया केपू में रानी की गोद में देकर रानी के हाथों चोरी मुठा कराया।

जब लैहणा सिंह ने लाहौर में शेर सिंह से सारा हाल कहा तो शेर सिंह ने ठाकर सिंह को परवाना लिखा कि तुम लाहोर में हाजर हो जाओ। तुम को गद्दी बख्शी जाएगी। एक परवाना कान्ह सिंह को भेजा कि जब ठाकुर सिंह लाहौर को आएगा तब उसके साथ कुल्लू के प्रतिष्ठित व्यक्ति और प्रजाजन भेजें। जब ठाकर सिंह बलाकी गौरी दत्त के पास परवाना पहुँचा वे तत्काल नदी पार करके खेखसू में पहुंचे, वहां से थानेदार ने भी आदमी साथ दिए और गौरीदत्त के साथ सुलतानपुर पहुँचे फिर कान्ह चन्द ने ठाकर सिंह के साथ कुल्लू के मातवर और प्रजा के दो अढ़ाई सौ आदमी साथ दिए। तब लाहौर पहुंच कर महाराजा के हाजर हुए, तब ठाकर सिंह की राजगद्दी की खिलकत हुई, सारेपा (सरोपा) और वगा बलाकी को भी सरोपा व सुनंगण (सोने के कंगन) बख्शे और भले आदमियों को एक एक दोशाला बख्शा, राजा ठाकर सिंह को जागीर दी। मिएं मियोंण वजीर मुसद्दी और दूसरे सभी भले आदमी को राजा ठाकर सिंह की नौकरी तावेदारी कर दी। जागीरी की फौजदारी दीवानी कलकटरी भी राजा ठाकर सिंह को बख्शी। वजीर महासिंह का पुत्र जै सिंह राजा ठाकर सिंह को पहुचाने कुल्लू आया। और जै सिंह के पास कानूगो को परवाना भेजा कि कुल्लू की प्रजा सराज, रूपी लाहौल, परोल, दोनों लग की तथा किउंठली रानी मंदिर रघुनाथ जी में यहां मर्यादा अनुसार मन्दिर में बैठा कर चौरी मुठा करना और दूसरे सब खानदानियों से भी कराना।

जब ठाकुर सिंह कुल्लू पहुँचा तो कानूगो कान्ह चन्द ने सभी वजीरियों के नेगी और प्रजा के प्रतिष्ठित इकट्ठे किए और श्री रघुनाथ जी के मन्दिर में गद्दी पर बैठा कर चौरी मुट्ठा किया। वजीर मुसद्दी, मिएं, महंत और बैरागी लोग पन्डित पुरोहित सब से यथोचित भेंट कराई। और प्रजा से प्रति घर एक रुपया सभी वजीरियों से नजर वसूल कराई। इतने में ठाकुर सिंह का पुत्र ज्ञान सिंह जन्मा। उसके पश्चात सं० ३१ श्री कम्पनी बहादर (ईस्ट इंडिया कम्पनी अंग्रेज) जी का हंगाम (मांघा) पर हुआ राज्य कम्पनी बहादुर का हुआ। यहां जो सिंघों की फौज थी और प्रत्येक किले में भी सिंघ फौज थी। श्री कम्पनी बहादर जी के हुक्म से लड़ाई करके कुछ मार दी और कुछ शस्त्र छीन कर राज्य से बाहर कर दिए।

उसके बाप श्री (लटा) लाट साहब ने भी ठाकर सिंह को जागीर दीवानी फौजदारी कलकटरी बख्शी।

सं० २८ हाड़ महीने राजा ठाकर सिंह समाप्त हुआ। इसके आगे राजा ठाकर सिंह का पुत्र ज्ञान सिंह है।

ढालपुर
कुल्लू

सांस्कृतिक स्मारक

● देवेन्द्र

किसी भी क्षेत्र के सांस्कृतिक अवशेष उसकी सभ्यता का प्रतीक होते हैं तथा उसके विकास का हमें ज्ञान देते है। कुल्लू क्षेत्र में बहुप्रकार के सांस्कृतिक अवशेष उपलब्ध हैं। इस घाटी के अनेक मन्दिर, उसकी कला और अन्त अवशेष इस क्षेत्र की संस्कृति का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करते हैं। मूर्तियां व शिल्प कला के अन्य उदाहरण यहां के लोगों की कला में निपुणता का प्रतीक हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से कुल्लू भारत के प्राचीनतम क्षेत्रों में से है। महाभारत में कुलूत (आधुनिक कुल्लू) का स्पष्ट वर्णन है, परन्तु पुरातत्व सम्बन्धी इतने पुराने अवशेष उपलब्ध नहीं हैं।

पहली अथवा दूसरी शताब्दी का सिक्का कुल्लू क्षेत्र का सबसे पुराना अवशेष है। इस सिक्के पर तब के राजा का नाम अंकित है (राजना कौलूतस्य वीराया शस्या)। यह एक विचित्र बात है कि इस एक सिक्के के इलावा और कोई सिक्का इस क्षेत्र से उपलब्ध नहीं हुआ।

कुल्लू में बहुत कम अभिलेख प्राप्त हुए है। प्राचीनतम अभिलेख महासामन्त, महाराज समुद्रसेन का निर्मण्ड ताम्र पत्र अभिलेख है। यह सातवीं शताब्दी (7 th Century A. D.) का है, इसके पश्चात् महाराजा बहादुर सिंह का ताम्र पत्र, जो कि सोहलवीं शताब्दी (16 th Century A. D) का है, मिलता है। बीच की लगभग नौ शताब्दियों की अवधि का कोई भी अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ। सोहलवीं शताब्दी के उपरान्त कई अभिलेख अवश्य मिलते हैं परन्तु अधिकांश देवताओं के मुखों पर लिखे गए हैं। इन अभिलेखों में केवल दत्ता का नाम मिलता है, इस प्रकार हमें इन राजाओं की धार्मिक धारणाओं का तो अवश्य ज्ञान होता है परन्तु इस क्षेत्र की सभ्यता पर यह अधिक प्रकाश नहीं डालते।

कला को धर्म ही हमेशा प्रेरणा देता है, तथा इसी से प्रेरित होकर शिल्पकारियों ने अति उत्तम कलाकृतियां रची। कुल्लू से एक सुन्दर बौद्ध लोटा मिला है, यह प्रायः ईसा पूर्व पहली शताब्दी (Ist Centry B. C.) में बनाया गया। इसकी शिल्पकारी में शुंग कला की झलक है। यह तांबे का लोटा आज भी ज्यों का त्यों है, इस पर राजकुमार सिद्धार्थ एक रथ पर सवार

राजकीय जलसे में जाते दिखाए गए हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि पहली शताब्दी में बौद्ध धर्म कुल्लू में फैला हुआ था। बौद्ध धर्म सम्बन्धी अन्य पुरातत्व अवशेष इस क्षेत्र से अभी तक उपलब्ध नहीं हुए। परन्तु चीन यात्री ह्यूनसांग जो कि कुल्लू क्षेत्र में सातवीं शताब्दी में आया हमें बताता है कि उस समय बौद्ध धर्म यहां प्रचलित था, तथा इस क्षेत्र में एक स्तूप तथा कई विहार थे।

कुल्लू घाटी के अन्य सांस्कृतिक अवशेष आठवीं शताब्दी उपरान्त के है। निर्मण्ड, जो कि सतलुज घाटी में कुल्लू जिला के दक्षिणी भाग में स्थित है, पुरातत्व सम्बन्धी अवशेषों का भंडार है। निर्मण्ड एक महत्वपूर्ण धार्मिक केन्द्र था, तथा 'पहाड़ों की काशी, के नाम से प्रसिद्ध था। यहां अनेक लकड़ी व पत्थर के मन्दिर हैं। लकड़ी में बनाये गए मन्दिरों में परशुराम तथा माता अम्बिका के मन्दिर सबसे पूज्य हैं। इसलिए इनकी मुरम्मत होती रहती है, फलस्वरूप इनका असली रूप कुछ बदल गया है। इन मन्दिरों की नक्काशी भी कलात्मक दृष्टि से कुछ घटिया है। परन्तु निर्मण्ड में अति सुन्दर कलाकृतियों की भी रचना की गई। पगोडा प्रकार के शिव मन्दिर में इस प्रकार के कई उदाहरण हैं। इस मन्दिर के केवल खण्डहर मात्र ही हैं, परन्तु दरवाजा अभी अच्छी हालत में है। इस पर गंगा यमुना, लक्ष्मी नारायण, शिव पार्वती अथवा गौरी शंकर की सुन्दर मूर्तियां अंकित हैं। इन सब के अतिरिक्त नृतक, नर्तकियों तथा संगीतज्ञों के चित्र भी अंकित हैं। इस चित्रकारी में गुप्त कला की स्पष्ट झलक मिलती है। निर्मण्ड का एक अन्य मन्दिर 'ठाकुर द्वारा' भी लकड़ी के बने मन्दिरों में विशेष स्थान रखता है। यह लोक कला का एक सुन्दर नमूना है। इस मन्दिर की नक्काशी का विषय हिन्दू धर्म के देवी देवता है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह लोक कलाकारों द्वारा बनाये गये है। महिषमर्दिनी, कार्तिक गौरीशंकर की आकृतियां मनमोहक हैं। परन्तु 'ठाकुर द्वारा' में सबसे महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक अवशेष पत्थर की बनी लक्ष्मी नारायण की सुन्दर मूर्ति है। सम्भवत: यह नवीं या दसवीं शताब्दी की है, तथा अपने प्रकार की एक अनोखी मूर्ति है। विष्णु को गरूड़ पर सवार दिखाया गया है। लक्ष्मी देवता की जांघ पर बैठी है। बहुत से अन्य हिन्दू देवी देवता भी दिखाए गए हैं। इस मूर्ति में माल कला का प्रभाव स्पष्ट है। इसी प्रकार की एक अन्य मूर्ति निर्मण्ड के भोला शंकर मन्दिर में है। यह शैव मूर्ति है तथा शिव पार्वती अन्य देवी देवताओं के संग अंकित हैं। भोलाशंकर मन्दिर की नक्काशी में पगोडा शिव मन्दिर की कला का प्रभाव स्पष्ट है। परन्तु यह मन्दिर काफी बाद में बनाया गया, फलस्वरूप कलाकृतियां उतनी सुन्दरता से नहीं बनाई गई। निर्मण्ड में पत्थर के मन्दिर लकड़ी के मन्दिरों की अपेक्षा बहुत कम है। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत से पत्थर के शिखर मन्दिरों का विनाश हो गया। लेकिन कभी यहां पत्थर के अनेक बड़े बड़े मन्दिर होंगे। कथित पंच पाण्डव मन्दिर इस बात की पुष्टि करता है। इस विशाल मन्दिर के केवल तीन छोटे छोटे मन्दिर अब बचें हैं, जिनमें से एक नन्दी मण्डप है। इस से यह स्पष्ट होता है कि यह कभी एक विशाल शैव मन्दिर था। निर्मण्ड में एक और पत्थर का शैव मन्दिर है, यह भोला शंकर मन्दिर के निकट स्थित है। इस मन्दिर का शिखर ध्यान देने योग्य है। सम्भवत; इसमें उड़ीसा की कला का प्रभाव है, क्योंकि यह भद्र प्रकार का है, जो कि उड़ीसा के मन्दिरों में देखने को मिलता है।

सतलुज घाटी में दलाश नामक स्थान में स्थित जगेश्वर महादेव का मन्दिर कला की दृष्टि से एक अति सुन्दर मन्दिर है। यह पगोडा प्रकार का है। इस मन्दिर की दिवारों, स्तम्भो तथा दरवाजों पर सुन्दर नक्काशी की गई है, यह लोक कला के सुन्दर उदाहरण हैं।

परन्तु सबसे अधिक सांस्कृतिक अवशेष कुल्लू प्रदेश की व्यास घाटी से उपलब्ध हुए हैं। जगतसुख यहां के राजाओं की प्रथम राजधानी। यहां से कई पुरातत्व सम्बन्धी अवशेष प्राप्त हुए हैं। जगतसुख के मन्दिरों मे शैव शिखर मन्दिर सबसे प्राचीनतम है। दूसरा महत्वपूर्ण मन्दिर संध्या गायत्री मन्दिर है। इसका कुछ भाग लकड़ी का तथा कुछ भाग पत्थर का बना है। दीवारों की नक्काशी शैव मन्दिर से सम्बन्धित है। इसका छत ढलवां है, सम्भवतः यह बाद में रचा गया था। इस मन्दिर में कई सुन्दर मूर्तियां हैं, ध्यान देने योग्य विष्णु की अनेक मूर्तियां हैं। कुछ तो कला के उदाहरण हैं और कुछ लोक कला को प्रदर्शित करती हैं। जगतसुख से ही एक सुन्दर दुर्गा महिषमर्दिनी की मूर्ति भी उपलब्ध हुई है, जो कि हिमाचल प्रदेश संग्रहालय शिमला में है। शैव शिखर मन्दिर में एक हरगौरी की मूर्ति है जो कि ध्यान से देखने योग्य है। यह सम्भत; १३वीं शताब्दी में बनाई गई। इस प्रतिमा में शिव के तीन मुख दिखाये गए हैं जो कि इस प्रकार की हर गौरी की मूर्तियों में कम ही देखने को मिलता है।

जिस तरह जगतसुख एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा, उसी तरह बजौरा अथवा हाट भी किसी काल में एक महत्वपूर्ण शहर रहा होगा। क्योंकि यह कुल्लू शहर और आसपास के क्षेत्रों तथा उत्तरी भारत के मैदानी इलाकों से आने जाने वाले व्यापारिक मार्ग पर स्थित था। इसीलिए बजौरा में एक किला भी था जो कि इस विख्यात मण्डी की रक्षा के लिए बनाया गया था। दुर्भाग्यवश इस किले के अब यहां कोई चिन्ह नहीं हैं। परन्तु अन्य सांस्कृतिक अवशेष काफी मात्रा में प्राप्त है। विश्वेशर महादेव मन्दिर तो विश्व विख्यात है। इस मन्दिर की मूर्तिकला साहित्यकारों तथा कला प्रेमियों की चर्चा का विषय बनी रही, विशेषकर दुर्गा महिषमर्दिनी की प्रतिमा। इसी मन्दिर में अन्य दो ध्यान देने योग्य मूर्तियां गणेश व विष्णु की हैं। वैसे तो बाहरी द्वार पर अंकित गंगा, यमुना की मूर्तियां भी कम नहीं हैं। यह प्रतिमायें पाल कला का एक सुन्दर नमूना हैं। बजौरा से ही एक अन्य सुन्दर विष्णु की मूर्ति भी मिली है। इसमें देवता को विश्वरूपी दिखाया गया है। एक सूर्य देव की मूर्ति भी मिली है, जो कि अब हिमाचल प्रदेश संग्रहालय शिमला में है। कुल्लू क्षेत्र से यह अपने प्रकार की एक ही मूर्ति है। यह काफी प्राचीनकाल की प्रतीत होती है क्योंकि इस प्रतिमा में कुषाणकला का कुछ प्रभाव देखने में आता है। बजौरा से एक अन्य विष्णु प्रतिमा में इनका वराह तथा नरसिंह रूप दिखाया गया है। इन मूर्तियों में ऐसा प्रतीत होता है कि यहां विष्णु की पूजा काफी प्रचलित थी। अभी भी ब्यास नदी के दूसरी ओर बजौरा के ठीक सामने दयार नामक ग्राम में त्रियुग नारायण का मन्दिर स्थित है।

एक और महत्त्वपूर्ण शिखर प्रकार का मन्दिर दशाल में स्थित गौरी शंकर का मन्दिर है। इसकी नक्काशी ध्यान देने योग्य है। लक्ष्मी तथा सरस्वती की मूर्तियां कला का उत्कृष्ट नमूना है।

नग्गर में कई प्रकार के सांस्कृतिक अवशेष प्राप्त हुए हैं। सतारवीं शताब्दी तक यह कुल्लू के राजाओं की राजधानी रही। नग्गर में अनेक महत्वपूर्ण स्मारक शिलायें हैं। अनुश्रुति अनुसार यह शिलायें कुल्लू के राजाओं की हैं। प्रत्येक शासक की मृत्यु पर यहां स्थापित की जाती थी। हिमाचल प्रदेश के अन्य भागों से भी ऐसी स्मारक शिलायें काफी मात्रा में उपलब्ध हैं। नग्गर में अन्य महत्त्वपूर्ण अवशेषों में गौरी शंकर तथा लक्ष्मी नारायण के मन्दिर हैं। त्रिपुरा सुन्दरी का मन्दिर पगोडा प्रकार का है। एक अन्य मन्दिर में चतुर्भुज की पूजा होती है। परन्तु यह मन्दिर लगभग उस समय बना जब कि इस घाटी में कला का पतन हो रहा था। नग्गर का एक महत्त्वपूर्ण भवन, कुल्लू के राजाओं का महल है। यह कुल्लू लोक वास्तुकला का एक अति सुन्दर उदाहरण है। तथा लगभग ४०० वर्षों से ज्यों का त्यों खड़ा है। १९०५ के भूकम्प का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा यद्यपि इस भूकम्प में कांगड़ा तथा अन्य क्षेत्रों के भवनों को बहुत क्षति पहुँची थी। इसी प्रकार का एक अन्य भवन निर्मण्ड में परशुराम के मन्दिर के कारदार का निवास स्थान है। नग्गर महल की अपेक्षा, कोठी में लकड़ी पर सुन्दर चित्रकारी की गई है।

नग्गर के निकट स्थित ठावा नामक गांव कर्मी सभ्यता का एक केन्द्र रहा होगा। परन्तु अब वहां केवल मुरलीधर मन्दिर तथा कुछ अन्य खण्डहर मात्र ही हैं। यह मन्दिर सोहलवीं अथवा सताहरवीं शताब्दी में बनाया गया। इस समय यहां वैष्णव धर्म का बोल बाला था, तथा इस मन्दिर की देख रेख के लिए दान दिए जाते थे। इसी कारण यह मन्दिर आज भी ठीक हालत में है। परन्तु कला की दृष्टि से यह मन्दिर बहुत सुन्दर नहीं है।

आधुनिक मनाली के निकट मनाली गांव है। यहां एक किला था जिसके अब केवल खण्डहर ही हैं, परन्तु कुछ सुन्दर प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं। दुर्गा की मूर्ति महत्वपूर्ण है, इसमें देवी शांत मुद्रा में है, तथा उसका वाहन सिंह भी पूज्य भाव से दुर्गा की ओर देख रहा है। ढूंगरी में स्थित हडिम्बा का मन्दिर कुल्लू घाटी के महत्त्वपूर्ण अवशेषों में से हैं। देवदार कुंज में यह मन्दिर बहुत प्रभावशाली प्रतीत होता है। सम्भवतः यह मन्दिर सोहलवीं शताब्दी में राजा बहादुर सिंह द्वारा बनवाया गया। मन्दिर में एक अभिलेख है जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है। कुल्लू लोक कला का यह एक और सुन्दर नमूना है। दरवाजे पर की गई नक्काशी बहुत आकर्षक है। एक आश्चर्यजनक बात यह है कि इस मन्दिर में कोई महत्त्वपूर्ण प्रतिमायें नहीं हैं। दुर्गा महिषमर्दिनी तथा कुछ अन्य देवी देवताओं की कुछ कांस्य मूर्तियां अवश्य हैं, परन्तु यह

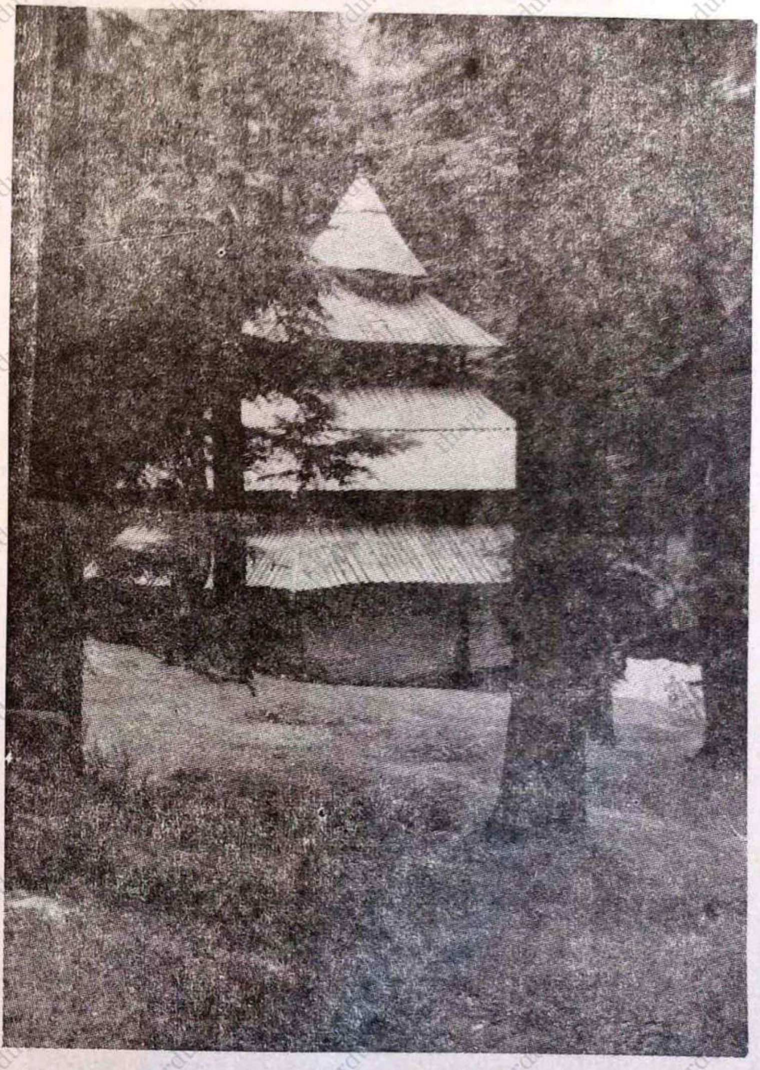

सांस्कृतिक स्मारक—हिडिम्बा मन्दिर

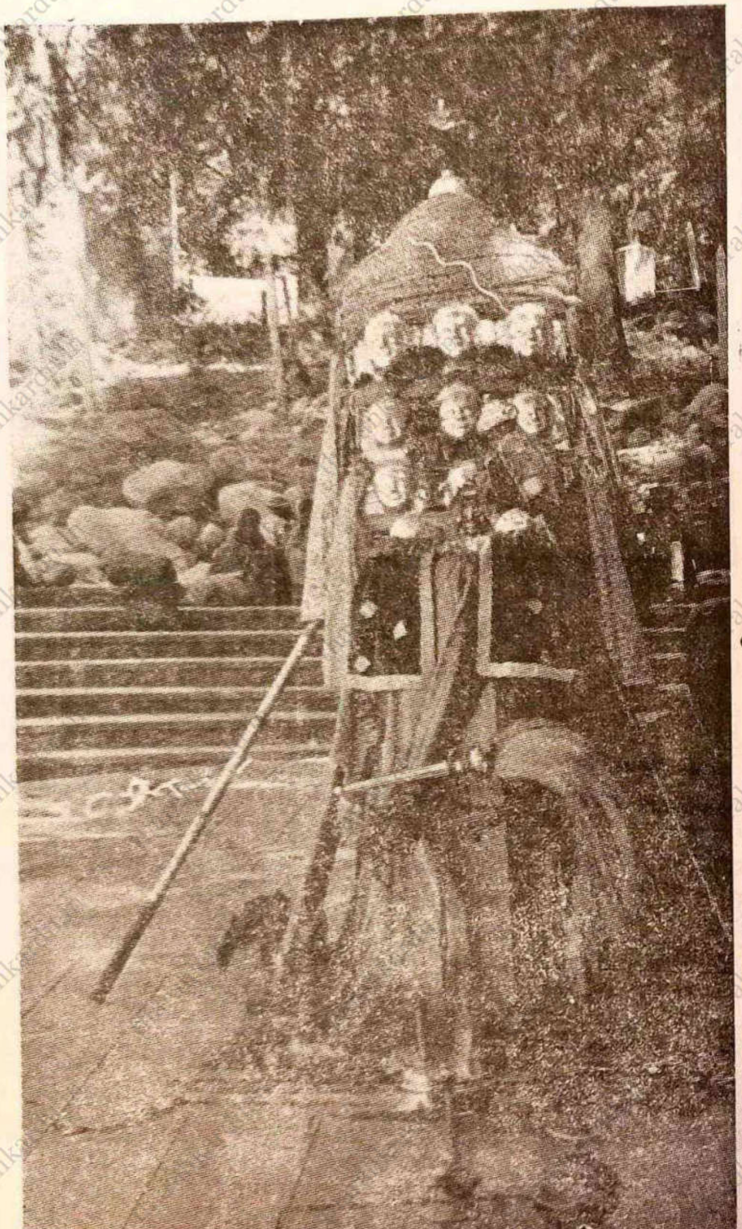

सांस्कृतिक स्मारक - मुख मनाली

tharahkardu.in

अठाहरवी या उन्नीसवीं शताब्दी की हैं। मनाली के निकट गोशाल गांव में स्थित गौतम ऋषि के मन्दिर की चित्रकारी हडिम्बा मन्दिर से मिलती जुलती है। हो सकता है कि यह दोनों मन्दिर एक ही कुल के कलाकारों ने बनाये हों।

यूं तो कूल्लू घाटी के प्रायः हर गांव में छोटा या बड़ा मन्दिर अवश्य है, परन्तु खखनाल में स्थित कार्त्तिक स्वामी का मन्दिर कलात्मक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है परन्तु भीतर कार्तिक की प्रतिमा ध्यान देने योग्य है। यह दसवीं या ग्याहरवीं शताब्दी में बनाई गई। इसमें पहाड़ी तथा भारतीय कलासिकी कला का सुन्दर सम्मिश्रण है। हलकी सी मुस्कान भरे छहों चेहरे बहुत सुन्दर हैं।

कुल्लू घाटी को देवभूमि भी कहा गया है ऐसा इसलिए है क्योंकि यहां बहुत से देवी देवताओं तथा ऋषि मुनियों की पूजा होती है। प्रतिमाएं कई बार केवल मुख मात्र ही होती हैं। यह मुख सोने, चांदी अथवा कांसे के बनाये जाते है। यह मुख लोक कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनसे कुल्लू की कला तथा संस्कृति का काफी ज्ञान प्राप्त होता है। यहां के निवासियों की धार्मिक धारणाओं का सही ज्ञान इन्हीं मुखों से प्राप्त होता है।

कुल्लू जिले में सूक्ष्म तथा भित्ती चित्र भी बनाये गए। यह अठारवी (18th) तथा उन्नीसवीं शताब्दी की रचनायें हैं। कई प्रकार के सूक्ष्म चित्र प्राप्त हुए हैं। यह अपने समय के समाज का चित्रण करते हैं। भित्ती चित्र कुल्लू में सुलतानपुर के शीश महल से उपलब्ध हुए हैं।

उपरोक्त अवशेषों के अतिरिक्त कुल्लू क्षेत्र में लोगों के रीती रिवाज, पहरावा, गहने तथा मेले और त्यौहार सब इस क्षेत्र की सभ्यता के प्रतीक हैं। सामाजिक संगठन भी यह बताता है कि किस प्रकार यहां सभ्यता का विकास हुआ। परन्तु यह प्रश्न यहां उठाना उचित न होगा। उपरोक्त लेख से यह सिद्ध हो गया होगा कि जहां तक सांस्कृतिक अवशेषों का प्रश्न है, कुल्लू एक अत्यन्त धनी क्षेत्र है। इन अवशेषों के गहरे अध्ययन से हमें इस क्षेत्र के लोगों के जीवन का प्राचीन काल से आधुनिक काल तक का अच्छा ज्ञान हो सकता है।

माल रोड
शिमला

★★
★

कुल्लू में मन्दिर व मूर्तिकला

● कुमारी पुष्पा बिन्द्रा

हिमाचल प्रदेश भारत के उन क्षेत्रों में हैं जो कि सांस्कृतिक अवशेषों से भरपूर है। यह प्रदेश अपने मंदिरों, देवी देवताओं मेलों इत्यादि के लिए विश्व विख्यात है। इस लेख में हम कुल्लू क्षेत्रों के मन्दिरों का वर्णन करेंगे। लकड़ी तथा पत्थरों के बने कई मन्दिरों तथा उनमें स्थित मूर्तियां, कुछ हद तक इस क्षेत्र को देव भूमि का नाम देने में सफल हुए हैं।

यहां के मन्दिर मुख्यता तीन प्रकार के हैं। (१) नागर शैली में बने मन्दिर - यह शैली सम्भवत: उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों से व्यापारिक मार्गों द्वारा यहां पहुँची। (२) बहू छत्तीय अथवा पगोडा प्रकार तथा (३) ढलवां छत शैली। दूसरी तथा तीसरे प्रकार की उत्पत्ति शायद पश्चिमी हिमालयों के किसी भाग में हुई हो। नागर शैली के मन्दिर केवल पत्थरों के बने हैं परन्तु पगोडा तथा ढलवां प्रकार के मन्दिरों में प्राय लकड़ी का प्रयोग ज्यादा है। केवल दीवारों में ही थोड़े पत्थरों का प्रयोग किया गया है। इस लेख में हम केवल नागर शैली के मंदिरों का तथा उनकी मूर्ति कला का उल्लेख करेंगे। परन्तु इस प्रकार के भी बहुत से मन्दिर कुल्लू क्षेत्र में हैं। हम केवल शैव मन्दिरों का अध्ययन करेंगे, क्योंकि वैष्णव तथा अन्य नागर शैली के मंदिर बहुत देर से बनाये गए तथा कलात्मक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नही हैं। ठावा में मुरलीधर मंदिर, गोजरा तथा वशिष्ट में राम मंदिर, नग्गर का चतुर्भुज मंदिर तथा जगत्सुख का जगन्नाथ मंदिर, सभी सताहरवी शताब्दी के पश्चात बनाये गए। इन मन्दिरों की वास्तुकला तथा मूर्तिकला उल्लेखनीय नहीं। इसकी अपेक्षा नागर शैली के शैव मंदिर कला के सुन्दर नमूने है। इनकी दीवारों पर सुन्दर नक्काशी भी की गई है। कुल्लू क्षेत्र की सभ्यता के विकास के अध्ययन के लिये यह महत्त्वपूर्ण है। दुर्भाग्यवश इन मन्दिरों में बहुत कम अभिलेख है, फलस्वरूप यह तय करना कठिन है कि यह सुन्दर मन्दिर किसने बनवाये ? सम्भवत: कुल्लू के शासकों अथवा उच्च राज्य अधिकारियों ने बनवाए होंगे। ऐसा प्राय भारत के अन्य भागों में होता आया है। जैसा कि हमने कहा कि शैव मंदिरों में विश्वासनीय अभिलेख नहीं है। इसी कारण इनकी तिथि भी तय करनी कठिन है। केवल विश्वेश्वर महादेव मन्दिर, बजौरा में एक अभिलेख है, परन्तु यह सताहरवीं शताब्दी का

कुल्लू में मन्दिर व मूर्तिकला

● कुमारी पुष्पा बिन्द्रा

हिमाचल प्रदेश भारत के उन क्षेत्रों में हैं जो कि सांस्कृतिक अवशेषों से भरपूर है। यह प्रदेश अपने मंदिरों, देवी देवताओं मेलों इत्यादि के लिए विश्व विख्यात है। इस लेख में हम कुल्लू क्षेत्रों के मन्दिरों का वर्णन करेंगे। लकड़ी तथा पत्थरों के बने कई मन्दिरों तथा उनमें स्थित मूर्तियां, कुछ हद तक इस क्षेत्र को देव भूमि का नाम देने में सफल हुए हैं।

यहां के मन्दिर मुख्यता तीन प्रकार के हैं। (१) नागर शैली में बने मन्दिर - यह शैली सम्भवत: उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों से व्यापारिक मार्गों द्वारा यहां पहुँची। (२) बहू छत्तीय अथवा पगोडा प्रकार तथा (३) ढलवां छत शैली। दूसरी तथा तीसरे प्रकार की उत्पत्ति शायद पश्चिमी हिमालयों के किसी भाग में हुई हो। नागर शैली के मन्दिर केवल पत्थरों के बने हैं परन्तु पगोडा तथा ढलवां प्रकार के मन्दिरों में प्राय लकड़ी का प्रयोग ज्यादा है। केवल दीवारों में ही थोड़े पत्थरों का प्रयोग किया गया है। इस लेख में हम केवल नागर शैली के मंदिरों का तथा उनकी मूर्ति कला का उल्लेख करेंगे। परन्तु इस प्रकार के भी बहुत से मन्दिर कुल्लू क्षेत्र में हैं। हम केवल शैव मन्दिरों का अध्ययन करेंगे, क्योंकि वैष्णव तथा अन्य नागर शैली के मंदिर बहुत देर से बनाये गए तथा कलात्मक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नही हैं। ठावा में मुरलीधर मंदिर, गोजरा तथा वशिष्ट में राम मंदिर, नग्गर का चतुर्भुज मंदिर तथा जगत्सुख का जगन्नाथ मंदिर, सभी सताहरवी शताब्दी के पश्चात बनाये गए। इन मन्दिरों की वास्तुकला तथा मूर्तिकला उल्लेखनीय नहीं। इसकी अपेक्षा नागर शैली के शैव मंदिर कला के सुन्दर नमूने है। इनकी दीवारों पर सुन्दर नक्काशी भी की गई है। कुल्लू क्षेत्र की सभ्यता के विकास के अध्ययन के लिये यह महत्त्वपूर्ण है। दुर्भाग्यवश इन मन्दिरों में बहुत कम अभिलेख है, फलस्वरूप यह तय करना कठिन है कि यह सुन्दर मन्दिर किसने बनवाये ? सम्भवत: कुल्लू के शासकों अथवा उच्च राज्य अधिकारियों ने बनवाए होंगे। ऐसा प्राय भारत के अन्य भागों में होता आया है। जैसा कि हमने कहा कि शैव मंदिरों में विश्वासनीय अभिलेख नहीं है। इसी कारण इनकी तिथि भी तय करनी कठिन है। केवल विश्वेश्वर महादेव मन्दिर, बजौरा में एक अभिलेख है, परन्तु यह सताहरवीं शताब्दी का

इस शैव मन्दिर के स्थान से ऐसा प्रतीत होता है कि यहां एक बड़े मन्दिर का भाग था। मध्य भारत के राज्यो में इस काल में पंचयतन प्रकार के मन्दिर बनाये जाते थे, जैसा कि राजस्थान में ओशिआ के मन्दिर। हो सकता है कि मौलिक रूप में यह एक बड़े शैव मन्दिर का छोटा सा भाग था और बड़ा भाग पास ही स्थित संध्या गायत्री मन्दिर में अब विलीन हो गया है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि छोटे शैव मन्दिर में पहले केवल एक शिवलिंग ही था। बाद में एक हरगौरी की सुन्दर मूर्ति स्थापित की गई। यह घटना शायद तेहरवीं शताब्दी में घटी, जब की गौरी-शंकर की पूजा सर्व साधारण हो गई थी। इसलिए इस मन्दिर का नाम भी गौरी शकर पड़ गया।

विश्वेश्वर महादेव मन्दिर, बजौरा

कुल्लू क्षेत्र में नागर शैली से बने पत्थर के मन्दिरों में विश्वेश्वर महादेव का मन्दिर उल्लेखनीय है। इसकी तुलना पश्चिमी हिमालय क्षेत्र के किसी भी मन्दिर से की जा सकती है। आठवीं अथवा नवीं शताब्दी की गुप्त कला प्रथाओं का यह अनूठा एक ही एक उदाहरण है। यह मन्दिर शिव महादेव के प्राकृति के परमात्मा के रूप को समर्पित है, परन्तु पूजा का विषय एक बड़ा शिवलिंग है, जो कि गर्भ गृह का काफी भाग घेरे हुए है। गर्भ गृह समचतुर्भुज आकार का है। दिवारों के तीनों तरफ बड़े बड़े आलने है' जिनमें सुन्दर प्रतिमायें रखी हैं। शिखर शनै शनै अपनी पूरी ऊंचाई तक पहुंचता हुआ छः भागों में विभक्त है। शिखर पर छोटा छोटा चैत्य मोतिफ चित्रित है।

मन्दिर की दिवारों पर सुन्दर नक्काशी की गई है, तथा पूर्ण-कुम्भ, किन्नर तथा नाग और अन्य मोतिफ अंकित हैं। दिवार के उपरी भाग में अर्ध कमल चारों तरफ चित्रित हैं। कमलों के ऊपर छोटे छोटे देव गृहों का समूह अंकित है। इनके ऊपर सुन्दर शकनास हैं जो कि गोल आकार में बना है। शकनास के उपरी भाग में त्रिमुखी शिव अंकित है। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि तीनों शकनासों में बीच वाला शिव का मुख अलग अलग भाव प्रकट करता है। भद्र मुखों में प्राय: बीच का मुख शांत भाव में चित्रित होता है, दायां मुख स्त्री का होता है-शिव की उत्पत्ति शक्ति का स्वरूप तथा बायां मुख शिव के घोर रूप को प्रकट करता है। विश्वेश्वर महादेव मन्दिर के भद्रमुख कुछ भिन्न है। केवल पूर्व और भद्रमुख में शिव के मुखों की उपरोक्त व्यवस्था है; परन्तु उत्तरी भद्रमुख में बीच का भद्रमुख स्त्री का है तथा दक्षिणी भद्रमुख में बीच का मुख शिव का घोर रूप प्रकट करता है। कुल्लू क्षेत्र के अन्य किसी मन्दिर में ऐसा देखने में नहीं आया।

यह मन्दिर अपनी सुन्दर मूर्तिकला के लिए विश्व विख्यात है। विष्णु, दुर्गा, गणेश तथा गंगा-यमुना की प्रतिमायें अति सुन्दर हैं। इनमें कुछ कुछ पाल कला की झलक है। विष्णु की मूर्ति

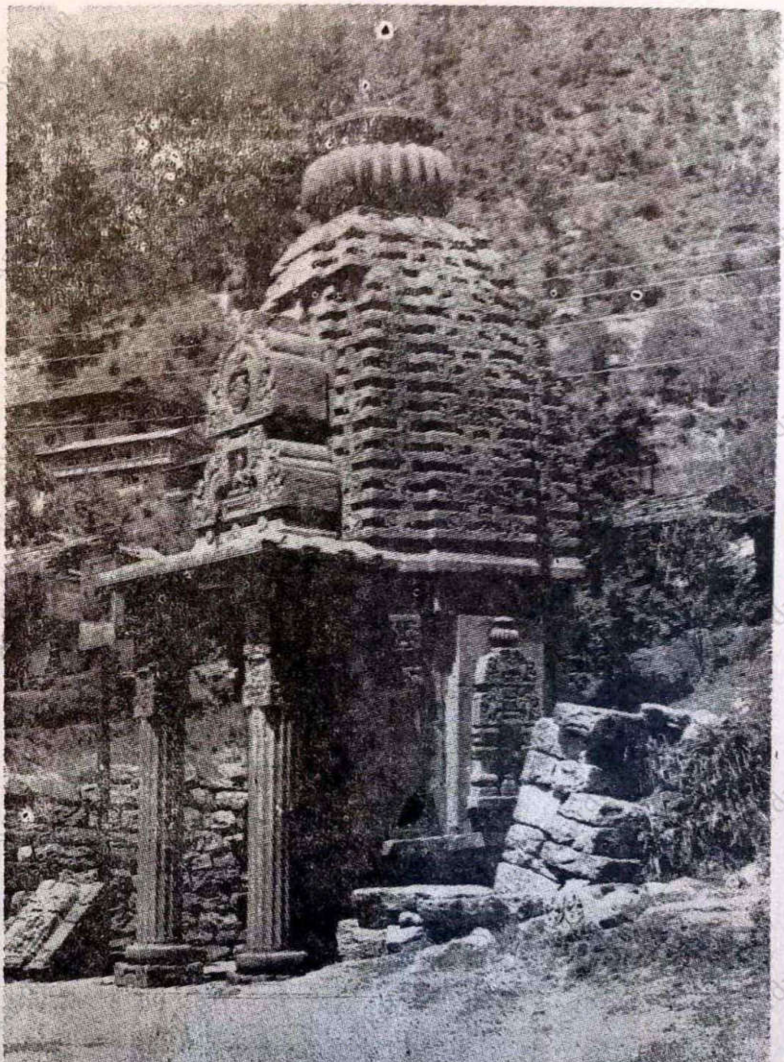

शैव मन्दिर, जगत सुख

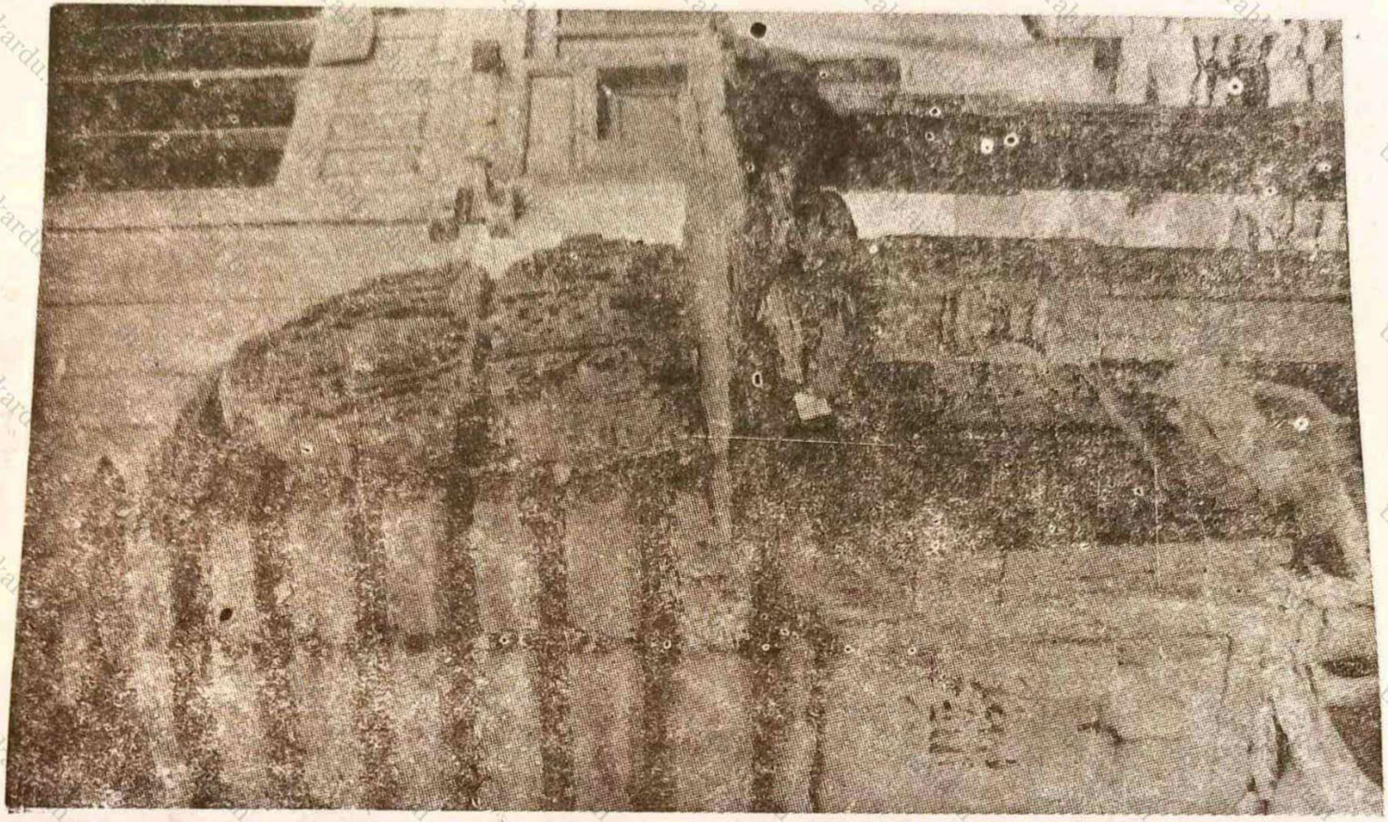

शैव मन्दिर निरमण्ड

दशाल मन्दिर

tharahkardu.in

मन्दिर निरमण्ड

मन्दिर के दक्षिणी आलने में रखी है। इस प्रतिमा में देवता की दो अन्य मूर्तियों के बीच में खड़ा दिखाया गया है। यह मूर्तियां सम्भवतः दण्डपाल तथा चामर धारिणी की हैं। इससे पहले कुल्लू क्षेत्र में इस प्रकार की विष्णु की मूर्तियों में देवता को भूदेवी, श्री देवी तथा भृगु और मारकण्डय ऋषियों के संग दिखाया गया है। विष्णु के चार हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा पदम् है। इस मूर्ति में प्रभा मण्डल पर भी सुन्दर नक्काशी की गई है, तथा इसके दोनों ओर दो उड़ते हुए गांधर्व अंकित हैं।

दुर्गा को महिषमर्दिनी रूप में दिखाया गया है। अन्य मूर्तियों के मुकाबले में यह कला का श्रेष्ठ नमूना है। दुर्भाग्यवश चेहरे को विकलित किया गया है। फलस्वरूप चेहरे का भाव स्पष्ट नहीं, परन्तु फिर भी देवी शक्ति का आभास एक दम हो जाता है। इस प्रतिमा में दुर्गा के दो पराक्रम दर्शाये गये हैं। एक तो महिष का वध, दूसरे राक्षस शुम्भ तथा निशुम्भ का बध। देवी यहां अष्टभुजी है, तथा त्रिशूल, वज्र, बाण, खड़ग, घंटा, पात्र तथा धनुष उठाये हुए है।

गणेश की प्रतिमा का उपरी भाग टूटा हुया है, परन्तु बाकी भाग अभी ठीक है। परन्तु जिस कला शैली का विश्वेश्वर महादेव मन्दिर की मूर्तियों में प्रयोग किया गया है वह गणेश की प्रतिमा के लिए उचित नहीं, फलस्वरूप कलात्मक दृष्टि से यह मूर्ति कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं। इस मूर्ति का एक विशेष लक्षण दो शेर है, जिनपर गणेश का पदमासन है। दोनो शेरों के बीच एक अन्य चित्र है जो शायद गणेश के गणों में से हैं। इस प्रकार की नक्काशी चम्बा की मूर्तिकला में प्रायः देखने को आती है।

गंगा तथा यमुना की प्रतिमायें अन्तराल के दोनों ओर अंकित हैं। यह भी पाल कला शैली के उत्कृष्ट नमूने हैं। यह अपने हाथों में पूर्ण कुम्भ तथा पदम् थामे हुए हैं। मूर्तियों में गहने तथा पहरावा दुर्गा महिषमर्दिनी की भांति है।

निर्मण्ड के शैव मन्दिर

निर्मण्ड से भी कुछ प्राचीन शैव मंदिरों के अवशेष मिले हैं। निर्मण्ड यद्यपि कुल्लू जिले में पड़ता है, सतलुज घाटी में स्थित है, तथा यहां के मन्दिर ब्यास घाटी के भवनों की अपेक्षा कुछ भिन्न है।

निमण्ड के मुख्य बाजार में स्थित पंच पांडव मंदिर वास्तव में एक शैव मंदिर है, जैसा कि नन्दी मण्डप तथा गर्भ गृह में स्थित शिवलिंग से स्पष्ट है। इन खण्डहरों में पांच प्रतिमायें अवश्य हैं, इस आधार पर लोगों ने इसे पांच पांडव मन्दिर कहना आरम्भ कर दिया।

इस मंदिर के मुख्य मंदिर का केवल निचला भाग ही दिखता है। तीन छोटे देव गृह कुछ ठीक हालत में हैं, इनमें से एक नन्दी मण्डप है उत्तरी भारत में नन्दी मण्डप प्राय: देखने में नहीं आते। पश्चिमी हिमालय के शैव मन्दिरों में नन्दी की प्रतिमा प्राय मुख्य मन्दिर के सामने खुले मैदान में रखी जाती है, उसके लिए अलग मण्डप नहीं बनवाया जाता। परन्तु दक्षिण भारत के मन्दिरों में प्राय: नन्दी मण्डप बनाये जाते थे। कुल्लू क्षेत्र में भी एक यह ही मन्दिर है जहां अलग नन्दी मण्डप बनाया गया।

पंच पाण्डव मंदिर के देव गृह बहुत सादगी से बनाये गए हैं। दीवारों पर बहुत कम चित्रकारी है। शिखर पर भी नक्काशी नहीं की गई, और न हीं शिखर के कोनों पर और भूमिज शिलायें हैं। दरवाजे पर कुछ चित्रकारी अवश्य है, जोकि गुप्त कला शैली से सम्बन्धित है, स्तम्भों पर भी गुप्त कला की छाप है। इनके ऊपरी भाग में पूर्ण कुम्भ अंकित है।

निर्मण्ड में एक अन्य नागर शैली में रचित शैव मंदिर है, यह ढलवां छत वाले भोलाशंकर मंदिर के निकट स्थित है। इस मंदिर के न तो कई अभिलेख है, तथा मूर्तिकला के भी उदाहरण बहुत कम है। फलस्वरुप इस मन्दिर का उचित नाम तथा तिथि उपलब्ध नहीं है। परन्तु शिखर की बनावट से ऐसा प्रतीत होता है कि यह मध्यकालीन युग में रचा गया। यह एक छोटा सा मंदिर है, परन्तु शिखर प्रभावशाली है। यह तेरह भागों में बना है तथा निर्मण्ड के अन्य मंदिरों के शिखर से मिलता जुलता है। शिखर के ऊपर एक अमलक शिला तथा पूर्ण कलश है। आश्चर्यजनक बात तो यह है कि इस पर चैत्य मौटिफ अंकित नहीं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह शिखर भद्र प्रकार का है जो कि प्राय: उड़ीसा के मंदिरों में देखने में आता है। शिखर के चारों ओर चार शकनास हैं। इन पर बेल और बूटियां से सुन्दर नक्काशी की गई है। मन्दिर के बाकी भागों पर कोई चित्रकारीं नहीं की गई।

गौरी शंकर मन्दिर दशाल

जहाँ तक वास्तुकला का सम्बन्ध है नग्गर तथा दशाल में स्थित गौरी शंकर मंदिर एक दूसरे से मिलते जुलते है, परन्तु दशाल का मन्दिर अधिक प्राचीन है, क्योंकि यहां की प्रतिमायें भिन्न प्रकार की शैली में रची गई है तथा यह कलात्मक दृष्टि से कहीं अधिक सुंदर है। दशाल मंदिर की शैली विश्वेश्वर मंदिर, बजौरा की कला से बहुत भिन्न है। दशाल मंदिर की नक्काशी मूल रूप से तो कलासिकी है, परन्तु इसमें पहाड़ी कला का भी प्रभाव है, ऐसा लगता है कि इसका सम्बन्ध बैजनाथ (कांगड़ा) के शैव मंदिर से है जो कि नवीं शताब्दी में बना। परन्तु दशाल का गौरीं शंकर मंदिर ग्यारवीं अथवा बारहवीं शताब्दी में रचा गया। मंदिर पंच रथ आकार का है तथा लगभग दस मीटर ऊंचा है। गर्भगृह समकोण है जिसके सामने एक

सोमसी

छोटा सा अन्तराल है। गर्भगृह के सामने खुले मैदान में एक नदी है। मध्यकालीन युग के अन्य मंदिरों की तरह इस मंदिर की दीवारें भी छोटे छोटे देव गृहों से सुसज्जित है। इन के अतिरिक्त पूर्ण कुम्भ तथा पदम् के भी भिन्न भिन्न रूप दीवारों पर अंकित है। अन्तराल के दो स्तम्भ अपनी मूर्तिकला के लिए ध्यान देने योग्य हैं। इनका मुख्य भाग गोल है, निचले भाग में नर्तकियों की प्रतिमायें अंकित हैं, ऊपरी भाग में श्रेष्ठ पूर्ण कुम्भ बने हुए हैं।

गौरी शंकर के इस मंदिर की मूर्तिकला बहुत ही सुंदर है। द्वारपाल तथा गंगा यमुना की मूर्तियां ध्यान देने योग्य है। यह बजौरा की प्रतिमाओं से बिल्कुल भिन्न हैं। परन्तु इनकी चित्रकारी में भी उच्च कोटी की कला की झलक है। अन्तराल के दोनों ओर की चित्रकारी का विषय विस्तृत है। नाच, गाने के दृष्य बहुत ही सुन्दर ढंग से अंकित हैं। इन दृष्यों के नीचे दोनों ओर लक्ष्मी तथा सरस्वती की प्रतिमायें हैं। अन्तराल के सामने वाली दीवार पर कुछ मिथुन के दृष्य चित्रित हैं, जो कि कुल्लू के मंदिरों में प्रायः देखने में नहीं आते। इस चित्रकला से ऐसा प्रतीत होता है कि गौरी शंकर का यह मंदिर उस समय बना जब कला अपनी चरम सीमा पर थी।

इस मंदिर मे कुछ अन्य मूर्तियां भी हैं। यहां कार्तिक की एक सुन्दर प्रतिमा है, जोकि सम्भवत इस मंदिर से भी पुरानी है। क्योंकि इसकी कला शैली कुछ भिन्न है, परन्तु देवता तथा उसके वाहन मयूर की नक्काशी सुन्दर है। मंदिर के बाहर मैदान में गरूड़ारूढ़ विष्णु की प्रतिमा है। गरूढ़ ध्यान देने योग्य है। वह लगभग मानवीय लगता है तथा अपने हाथों में एक अमृतघट सम्भाले हुए है। शायद यह मूर्ति लोक कलाकारों द्वारा बनाई गई।

गौरी शंकर मन्दिर नगर

शैव धर्म का सबसे देर में बना कुल्लू क्षेत्र में शिखर मन्दिर सम्भवतः नगर में स्थित गौरी शंकर मन्दिर है। यह शायद बारहवीं अथवा तेहरवीं शताब्दी में बनवाया गया। इसके बाद धीरे-धीरे वैष्णव धर्म मे शैव धर्म का स्थान ले लिया तथा बड़े बड़े शिखर मंदिर विष्णु के विभिन्न रूपों को समर्पित्त किये गए। नगर में ही देर से बना शिखर मंदिर विष्णु चतुर्भुज का है। कुल्लू क्षेत्र के अन्य भागों में भी सम्भवतः यह ही हुआ तथा रघुनाथ, लक्ष्मी-नारायण, त्रीयुग-नारायण तथा कृष्ण के मंदिर बनवाये गये। इस प्रकार नगर का गौरी शंकर मंदिर उस का अंतिम मंदिर है जबकि शैव धर्म इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण धर्म था।

यद्यपि यह मंदिर, दशाल के गौरी शंकर मंदिर से प्राकार में मिलता जुलता है परन्तु इन दोनों की तुलना नहीं की जा सकती। शिखर पंचरथ प्रकार का है तथा नौ भागों में बना हुआ है। सबसे ऊपर एक आमलक शिला तथा पूर्ण कलश है। शिखर की सतह पर कुछ घटिया प्रकार का चैत्य मोतिफ अंकित है। सामने एक भद्रमुख है। इस मंदिर की शिल्पकारी उच्चकोटी की नहीं है। ऐसा द्वारपाल तथा गंगा यमुना की आकृतियों से स्पष्ट है। पूजा का मुख्य विषय गौरी शंकर की युगल मूर्ति है जो कि पहाड़ी शैली में बनाई गई है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह मंदिर उस समय बना जब कि कुल्लू घाटी में कला का पतन हो रहा था। यद्यपि कला को फिर से चेतन करने का प्रयत्न किया गया, परन्तु बजौरा तथा दशाल के मुकाविले के मंदिर नहीं बनें।

इतिहास विभाग
सैंट बीड्स कालिज
शिमला-२

★★★
★★
★

कुल्लू के लोकगीत-लोकनृत्य तथा लोकनाट्य

● उर्मिला बलराम

देव भूमि कुल्लू के प्राकृतिक सौंद त्येक दर्शक का मन लुभाते आए हैं। यहां के मन मोहक प्राकृतिक दृश्य, ऊंची ऊंची ि च्छादित पर्वतों की चोटियां, ठण्डे ठण्डे पानी के चश्मे, मद मस्त वहती उन्मुक्त नदियां, घने घने जंगल और इन घने जंगलों में मधुर पक्षियों का कलरव। बड़े २ कवियों ने यहां कविता लिखी। ऋषियों ने अपना तप यहां सम्पूर्ण किया। इस सुंदर तथा शांत देवताओं की भूमि में झरनों से मानों कविता की फव्वार छूट रही हो। हर जगह शांति तथा प्रेम दर्शित होता है। ऐसे प्राकृतिक सौंदर्य में बसने वाले भोले भाले यहां के बासी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन मनमोहक प्राकृतिक सौन्दर्य में मनुष्य ने अनोखी ही प्रसन्नता अनुभव की होगी। इस अनूठे प्राकृतिक सौंदर्य में मनुष्य ने अपने आप मस्ती से झूमना व गाना आरम्भ किया होगा। इस वातावरण का प्रभाव लोकमानस पर प्रतिविम्वित होता है। प्रकृति के इन्हीं सुन्दर तथा मोहक दृष्यों ने मनुष्य के स्वर में माधुर्य, पैरों में थिरकन, हाथों में हरकत तथा जिस्म में हिलजुल पैदा की और उसने खुशी से गाना नाचना आरम्भ किया होगा। यहां के लोकगीतों में यहां का जन जीवन, सभ्यता, संस्कृति तथा इतिहास की झलक हमें देखने को मिलती है;

"देशा देशा न शोभला शोभला देश कुल्लू रा म्हारा
आसे सी एई रै तितरू चाकरू ए बगीचड़ू म्हारा"

अर्थात् अपना देश सबसे प्यारा है। यह हमारा सुन्दर उपवन है, हम इसके पंछी हैं। इसी गीत से दर्शित होता है कि यहां के लोगों को अपने देश से कितना प्यार है।

कुल्लू के लोक गीतों में प्रेम, विरह, कुल्लू देश से प्यार, सामाजिक घटनाएं, इसके साथ ही साथ धान लगाते हुए, खेतों में काम करते हुए मेले में खुश हो कर नाचते हुए प्रेम तथा उलाहनों से भरपूर गीत सुनने को मिलते हैं। लाल्हड़ी गीतों में प्रश्नोत्तर का भाव प्रकट होता है।

प्रेम भरे लोकगीतों में प्रिय प्रियतमा के संवाद बहुत ही प्रशिद्ध हैं। प्रेमी प्रेमिका पंछी बनकर स्वच्छन्द रहना चाहते हैं। इस का उदाहरण हमें निम्न लोक गीतों में मिलता है;

"हेतिए दाची शेटी बौगड़े बौणा,
सुख नी बोलिया हौसणा ।
बूरा नी बोलिया रोणा,
चिड़ू रा लोड़ी थी जलम;
दुई रोणा थी बोंणा ।

प्रेमी प्रेमिका से कहता है, प्रिये यदि मनुष्य अधिक सुखी होता है तो उसे हंसना नहीं चाहिए और यदि दुःख अधिक हो जाए तो रोना नहीं चाहिए। काश ! कि हम पक्षी होते तो दोनों वन में ही रहते ।

प्रिय अपनी प्रेयसी को चिड़िया के रूप में मिलने के लिए कहता है ।

"काले जामू री ढोलकी बाजी जाहनू रै टेके
मेली लोड़ी सा भर दपोहरे लन्ही चिड़ी रे ।"

कि हे प्रिय तू दिन मैं चिड़िया बनकर मुझे मिलना । इसी प्रकार प्रेमी अपनी प्रेमिका को पलकों के ऊपर बिठाना चाहता है ।

"खौली नौच निमुआ खौली नौच साहिबा
धौरा त आगली शाहड़ी, बाहणी लाई फिकरी
रोटी बी नी मुम्बै रूचदी निमू री फिकरी
खड्डी न्होठी राइते फेटी नौठी कमांदे
ओरे पोरे हेरी नीं नौइषदी देशी नजरी पंदै ।"

प्रेम तथा प्रकृति वर्णन अधिकतर कुल्लू के लोकगीतों में पाया जाता है । जहां कुल्वी लोकगीतों में प्रिय प्रियतमा के उलाहने व संवाद हमें प्रचुर मात्रा में देखने को मिलते है वहां प्रिय अपनी प्रेयसी के लिए प्रतीक्षा के ताना बाना बुनते हुए कहता है ;

"पीणी पिछे बोला पिणसू
चौकी पिछे मलाणा
जादी भूरी ऐली म्हारी पाहुणी
तौम्बू रेशमी पाणा ।"

अर्थात् प्रियतमा के आने पर रेशमीं तम्बू लगाऊंगा । फिर अपनी प्रियतमा को न पाकर प्रेमी दुशहरे के मेले में मिलने की कामना करता है;

"तेरे बागा रे अम्बुए पाके
म्हारी बागा रै केले

ओखे तू मेल न्होली
मेली दसमी रे मेले।"

अपनी प्रियतमा की प्रतीक्षा को अन्धकार समझ कर प्रिय के मुख से कुछ इस प्रकार के भाव निकलते हैं,

होरा बै देई ए जो मरजी मुम्बै फूले री हारा,
छेके ऐजी ए झूरिए तौ बाहजी हुआ निहारा।

प्रियतमा के रूठने पर प्रेमी कुछ परेशान सा हो जाता है और मनाने के लिए दोहड़ू (पट्टू) बुनकर देने को भी कहता है।

'हाईए रुषदी मते टेहलू लाड़िए दोहड़ू देनू बूणी।
विदा लागी लो दसमी हेरी शाढ़े री कुणी।"
विरह वर्णन भी काफी मात्रा में कुल्वी लोक गीतों में पाया जाता है।
"सौंझ पौई बोला सौंझड़ी सौझड़ी औग बोलली गेठे
तौ निहालदे भालदेया झूरिए हौरबी रै डेलडू बेठै।

अर्थात : 'झूरी' यानि प्रेयसी की प्रतीक्षा करते करते आंखें भी पत्थरा गई। कुल्लू के लोकगीत करुण रस से भी भरपूर हैं। 'रेबते नाथा' का गीत जो अपनी पत्नि की मृत्यु से बहुत दुःखी है, लोकगायक ने अपने मन के भाव कुछ ऐसे प्रकट किए हैं:-

"रुगली नौठी मौरिया,
फाड़े रा बालक हेरी,
रुगली लाड़ी ए याद न्होली बिसरी तेरीं।"

रुगली तो अब इस लोक को छोड़ चली गई लेकिन उसकी याद नहीं भूल रही। छोटा सा बालक छूट गया अब तुम ही इसका लालन पालन करना। लोक गीत हृदय की वेदना की गहराई को छू लेता है। रेबते नाथ की वेदना की अनुभूति पाठक को होती है। हृदय करुणा से भर जाता है।

प्रेम वर्णन, प्रकृति चित्रण तथा विरह बर्णन के साथ २ हमें ऐसे लोक गीत मिलते हैं जो कि खेतों में काम करते हुए गाए जाते हैं। लोग मस्ती से गाते भी हैं और काम भी करते हैं। इस प्रकार काम करने का आनन्द ही कुछ और होता है। इन गीतों को यदि हम श्रमगीत कहें तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। रुहणी करते हुए यनि धान रोपाई के समय जो लोक गीत गाते हैं उस गीत को ओभूड़ू कहते हैं यहां प्रस्तुत है औभू का एक उदाहरण। इसमें दो दल एक दूसरे को सम्बोधित करते हुए जाते हैं। एक पंक्ति को दोहराते हैं जैसे :

१. हाईए ओभिए
२. उभे ...
चौले ओभिए
उभे
भांउशी ए धारे
भांउशी ए धारे
२. हां ड़ें ओभूआ
उभे
मेरी केरी तुहारे
लैहणी ना हौछी रैं शारे
हौछी रैं शारे नँई समझे
तौ भालदेया कौंटी ता डूबे ध्याड़े ।
डूबे ध्याड़े
मेरी ओभिए डूबे ध्याड़े
हांईए फेटे लच्छण ठट्ठे रैं बूभणे माड़
हौछी री बिरका उभे
पूजी नोहली खोली दुआरे
भूरी तोपी जंडी गरीं छुआरे
ओजकी बिछड़ी मेली लोड़ी आगले छुआरे
मेली सौते तुआरे
ओबू रैं शारे
हो मेरे ड़ें ओभूआ
चौले ओभिए पोरले पूंघा
पोरले पूंघा ।

कुल्लू के जनजीवन का विशेष पहलू कृषि ही है इस का प्रभाव गीतो में भी पाया जाता है। यहां के लोग परिश्रमी हैं और उनकी श्रम की प्रवृति लोक गीतों में स्पष्ट झलकती है। जीवन की कठिनाईयो से सघर्ष करते हुए वे हंसते गाते हैं चाहे घास कटाई ही करने जा रहे हों तो उनके भाव संगीत मय स्वर लहरी में गूंजते हैं। जैसे :

"गाहू वैं जाणा भेची मामिए लूड़ बुड़ांदी काटी ।
हांईए गाहू वैं जाणा भेची मामिए-----।
तेरी भरी जुआनी न लोहू नी पूछदा जाती
हांहिए गाहूँ वैं जाणा। भेची मामिए——"

इसी प्रकार कृषि कार्य में जंगली जानवर काफी परेशान करते हैं इनका चित्रण भी हमें काफी लोकगीतों में मिलता है जैसे बन्दर और शाही की बातें अकसर दिखाई देती हैं

जैसे "हांईए मेरी बाहमणीए तौम्बू जौन्दरे
आलू खाए शाही ए छौली बान्दरे
फुला देई ए मेरी बाहमणीए तौम्बू हान्दरे ..."

इस लोक गीत में फूला नामक स्त्री की हत्या की कथा का वर्णन मिलता है।

जहां लोक गीत प्रकृति के नजारों से तथा प्रेम विरह वर्णन से भरपूर हैं वहां वीरता की भावना की भी कमी नहीं है। देश रक्षा में कुल्लू के लोग कभी पीछे नहीं रहे हैं। कुल्लू के राजा ने रामपुर बुशहर के राजा पर आक्रमण किया इसमें कुल्लू वाले राजा की विजय हुई। खेखर के मैदान में घमासान युद्ध हुआ और वहां लाशों के ढेर लग गए और ऊपर चीलें मंडरा रही थी तो इस प्रकार गीत प्रचलित हुआ :

की आउ मामा अंगता
की कुल्लू रा राजा
खेखरे सुआणा न ढोलकी रा बाजा
खेखरे सुआणा न पौट्ट गरड़ फिरे
न लागदी तुपके न लागदी तीरे।

अंग्रेजों के राज्य काल में नम्बरदार, जैलदार भोली भाली जनता को खूब लूटा करते थे। घूसखोरी करते थे। तभी "टिकमू लाड़ी" नामक गीत में ऐसे कुछ भाव देखने को मिलते हैं।

डौन्डे रा नी देणा बोला डबूआ डबूआ
सोड़ी री टिकली घोड़ी

अर्थात जुर्माने का तो मैंने एक पैसा नहीं देना है रिश्वत की घोड़ी देंगे।

बांठड़ा गीत भी कुल्लवी लोकगीतो में काफी प्रचलित है। इसके अतिरिक्त होली के अवसर पर लोक गीत तथा बसन्त ऋतु के गीत अपना ही महत्त्व रखते हैं।

कुल्लू के लोक नृत्य को नाटी कहते हैं। नाटी शब्द संस्कृत शब्द नाट्यम का बिगड़ा हुआ रूप है। नाटी का आरम्भ शहनाई, ढोल, नगारे के नाल के साथ होता है। करनाल व नरशींगे भी संगीत के आवश्यक अंग हैं।

संगीत की मीठी तान के साथ नर्तकों के पग उसका उत्तर देने हेतु उठ जाते हैं। और धीरे धीरे एक दायरा सा बन जाता है नर्तकों की एक विशेस वेशभूषा होती है। उन का काला टोपा

जिसके किनारों पर चांदी की झालर और उसके साथ मनाल की रंग विरंगी कलगी होती है। सफेद रग का ऊनी चांगा होता है उसको कमर से बांधने के लिए सफेद कपड़ा होता है। इसे "पटकू" कहते हैं। और चूड़ीदार पजामा होता है। ऐसी बेश भूषा नर्तक को काफी चुस्त बनाती हैं।

नाटी कई प्रकार की हैं। उदाहरणतया ढीली नाटी, दोहरी नाटी, फेटी नाटी, खड़ाईत, गूगती नाटी, लाम्बर तथा लाल्हड़ी।

ढीली नाटी में नृत्य धीमी गति से होता है। अर्थात धीरे धीरे नाचते हैं। जबकि दोहरी नाटी में नर्तक एक दायरे में नाचते हुए दो दायरो में बंट जाते हैं। झूम कर नाचने को फेटी नाटी कहते हैं। इस प्रकार नर्तक गीत भी गाते जाते हैं। ऐसी नाटियों में परम्परा के अनुसार महिलाएं भाग नहीं लेती। हां अब प्रदर्शन व सांस्कृतिक कार्यक्रमों में महिलाएं भी पुरुषों के साथ नाचती हैं।

लोकनृत्य का दूसरा रूप खड़ाईत है। इस नृत्य में चुस्त नतक तलवार हाथ में लोक नृत्य करते हैं। ये नर्तक दायरे के बीच में नाचते हैं। दायरे के साथ कदम मिलाने इनके लिए आवश्यक नहीं हैं तलवार के साथ नर्तक दो दो की जोड़ी में नाचते हैं कभी कभी लोक बादक बाजे को तेजी के साथ बजाते हैं तब केवल तलवार से नृत्य होता है।

लोक नृत्य का तीसरा रूप लाम्बर है। इसमें नर्तक एक दूसरे को पीठ के पीछे से हाथ पकड़ कर नहीं नाचते बल्कि पहले से थोड़ा दूर दूर नाचते हैं। पहले दांए पैंर से एक पत्र आगे रखते हैं फिर बांई, दांई तथा बांया पग एक साथ पीछे हटाते हैं। और चौथा पग एक दम लम्बा लेकर नृत्य के घेरे में आते हैं। पैरों के साथ साथ हाथों से तालियां भी बजाते हैं।

घूघती किस्म के नृत्य में नर्तक अपना मुंह दायरे के आगे की ओर रखते हैं। प्रत्येक नर्तक अपने दोनों हाथ आगे के नर्तक के कन्धे पर रखते हैं। आगे के तीन या चार लोग गीत गाते हैं बाकी उसे दोहराते हैं। पैरों के ताल का उतना ध्यान नहीं रखा जाता, बल्कि शरीर की लचक तथा कमर की लचक का विशेष ध्यान रखा जाता है।

लाल्हडी नृत्य केवल महिलाओं का नृत्य है। इसमें महिलाएं दो दायरे आमने सामने बना कर नाचती हैं व गाती हैं। एक दायरा गीत गाता हुआ व झूम झूम कर एक दूसरे की तरफ आता जाता है। हाथों से तालियां बजाता जाता है। जब गीत का टप्पा पूरा हो जाता है तो महिलाएं आगे बढ़ती हैं और गीत का दूसरा टप्पा पूरा करती हैं। कई बार एक ही दायरे में भी नृत्य होता है। इस नृत्य में बाजे नहीं बजाए जाते।

प्रस्तुत है लाल्हड़ी का एक उदाहरण :

खेलदी ऐजे मेरी माऊआ रूपिए
जौंगड़ू शौले मेरी माऊआ रूपिए

छौशिया देतू मेरी भाऊआ रूपिए
किज़ो रे तेले मेरी भाऊआ रुपिए
गुट्ठी रे तेले मेरी भाऊआ रुपिए
बास परीरी मेरी भाऊआ रुपिए
ओज छौशणा देई डिगणे ऐज मेलणा गौले
मेरी लाहलाड़िए ऐज खेलणा खौले मेरी
मेरी लाल्हड़िए ऐज मिलणां गौले मेरी लाल्हड़िए

कुल्लू के लोक नाट्य में चम्बा किन्नौर तथा महासू की तरह "हौरन" बहुत प्रचलित है। यह नाट्य रात्रि में होता है इसमें दो मनुष्य झूमते हैं और ऊपर से कम्बल डाला जाता है। और लकड़ी के सींग लगाये जाते हैं। इस हिरन के साथ दो आदमी होते हैं। एक स्त्री भेष में तथा दूसरा पुरुष भेष में, स्त्री भेष मे जो होता है उसे भुड़ी कहते हैं और जो पुरुष भेष में होता हैं उसे कान्ह कहते हैं। इनके साथ दो व्यक्ति मुखौटे पहनकर जोकर बने होते हैं जोकि दर्शकों को हंसाते हैं। इनके साथ कुछ बाजा बजाने वाले व गाने वाले होते हैं। जोकि रात को गांव गांव में जाकर लोगो का मनोरंजन करते हैं। यह बात विशेष तौर से ध्यान में रखने योग्य है कि यह नाट्य गाँव में सबसे पहले देवी देवता के प्रांगण में खेला जाता है। लोग यह गीत गाते हैं।

"नौचे नौचे हौरनिए देवा री खौली"
अर्थात् ए हौरन तू देवता के आंगन में नाच कर इस प्रकार आगे गाते हैं।
"नौचे २ हौरनिए देवा री खौली
छेके छेके नौचे हौरनिए खोला न रौहली सोई"

अर्थात् जल्दी जल्दी नाच कर नहीं तो तू आंगन में सोई रहेगी इसके साथ ही हौरन धीरे धीरे बैठ कर सोने का अभिनय करती है।

देवता के प्रांगन में नृत्य करने के पश्चात गाँव में हर घर में यह हौरन नाट्य होता है। कुछ दर्शक बीच में कुछ प्रश्न पूछते हैं और मुखौटे पहने लोग उत्तर देते हैं। इस प्रकार हास्य व्यंग्य भी चलते रहते हैं। जैसे कई प्रश्न करते हैं "तेरे या बा रा ां की? यानि तेरे मां बाप का क्या नाम है? इत्यादि-इत्यादि।

"होरनिए नाचे
तेरा ठिंगड़ा काट्ठू दाचे"

इस प्रकार मार्गशीर्ष महीने तथा पोष महीने की ठण्डी अन्धेरी रातें इस नाट्य से सुहावनी बन जाती है जिस घर में यह नाट्य खेला जाता हैं वे कुछ आवाज इत्यादि इन्हें देते हैं।

हौरन नाट्य कब से प्रचलित हुआ कुछ ठीक से नहीं कहा जाता। लोक कथा इस प्रकार व्याख्या करती है कि किसी क्रूर अत्याचारी शासक से लोग बहुत दु:खी थे उसे मारने हेतु यह नाट्य रचा गया। जब राजा बहुत मग्न होकर नाट्य देख रहा था तो धीरे २ उस हिरन में छुपे सहस्त्र मनुष्यों ने उसका बध कर दिया सारे लोगो ने सुख की सांस ली। शायद तभी से इस लोक नाट्य का प्रचलन हुआ।

कुल्लू के लोक नाट्य में चन्द्रावली को भी यदि हम सम्मिलित करें तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। विजय दसमी के दितो में रघुनाथ जी के शामियाने में स्त्री भेष में सुसज्जित कुछ लोग सारी रात ईश्वर लीला करते हैं। शायद यह रास लीला का ही रूप है।

आकाशवाणी शिमला
शिमला-४

कुल्लूई लोकाचार-लोकविश्वास-टूने-टोटके व लोक-चेटक

●विद्या शर्मा

कुल्वी लोक विश्वास, लोकाचार, टूने-टोटके, लोक-चेटक इन सब विश्वासों के पीछे जन-जीव की भाव-भंगिमायें एवं अन्ध विश्वास की बात कुछ मूक रूप में अदृश्य रहती है। बात का स्पष्टीकरण तभी हो पाता है जब जन-साधारण का विश्वास अन्धता की सीमा को लांघ कर भी पत्थर से भगवान के दर्शन करने तक तृप्त नहीं हो जाता। दैव की कृपा से यदि पत्थर से भी केवल हाथ बाहर निकल जाये जिस भेंट को पाने के लिये हाथ बाहर निकाला है तो वे जन धन्ना जट की तरह संतुष्ट नहीं हो पायेंगे क्योंकि उनका उद्देश्य चमत्कार की सीमा को प्रत्यक्ष रूप में उन्हें लांघना है। फिर जन-जीवन के विश्वास का आधार उनके भोलेपन पर आश्रित होता है। जीवन से लेकर मृत्यु तक उनका विश्वास देवी-देवताओं की दया दयालुता पर अवलम्बित है। किसी व्यक्ति विशेष की मृत्यु हो गई तो साधारण व्यक्ति के विश्वास का आधार यही होगा कि अमूक देवता के कोप भाजन से ही अमूक व्यक्ति का अन्त हुआ है। कभी जल-वृष्टि न हुई या उपज भी ठीक नहीं हुई तो अमूक देवता की कुदृष्टि का फल होता है। आॅटर सिराज कुल्लू दलाश में महादेव का मन्दिर है वहां पर मन्दिर में जाकर परम्परा दृष्टिगत होती है कि जब उपज इत्यादि ठीक नहीं होती है तो वे 'झाड़ा' नामक उत्सव करते हैं और इस बात की जानकारी प्राप्त करते हैं कि उपज ठीक न होने का क्या आधार रहा है जल-वृष्टि क्यों नहीं हुई इन सब शंकाओं के समाधान के लिये वे सब झाड़े नामक उत्सव को करके उस व्यक्ति विशेष से कुछ पूछते हैं जिसकी उन्हें आवश्यकता होती है। आज भी यह बातें कुल्वी जन-साधारण में सजीव है और अगर कहीं निर्जीव है तो लोक कथाओं एवं लोक गीतों के प्रचलन से सजीव हो गई है। घरों में बुढ़े दादा-दादी चौपालों में बैठे ग्रामवृद्ध सब कथायें सुनाते है तो श्रोता उन्हें उत्सुकता से सुनते है। प्राचीन काल में जब मुद्रण का अविष्कार नहीं हुआ था तब तो विद्या का आदान प्रदान मौखिक रूप में होता था। कथायें अधिक लोक-प्रिय थीं। धर्म के संदेश हो या राजनीति के गूढ़ तत्व कथा के माधुर्य में आप्लावित हो कर जन-साधारण के लिये लाभकारी बन जाते थे।

टुण्डी राक्षस की कथा "मीर्या रंभे नेगी दलरिय" जैसी अनेक कथाएं जो आज भी कुल्वी ग्रामो में प्रचलित हैं, आज भी जन-साधारण के आचार-विचार का आधार बनी हैं। आॅटर सिराज कुल्लू के कुछ विशेष जन पद रिवाड़ी, दलाश, छोहाण इत्यादि जनपदों में आज भी कुछ सत्य गाथाए जन-साधारण में प्रसिद्ध हैं। यथा घग्गी आओ स पूरो जादू खोर हाला बच्चें बै। अर्थात "घग्गी आ गया, वह पूरा ही जादूगर है उससे बचो।" यह उपरोक्त जन-भाषा का शब्द जन-साधारण में बड़ा ही मजाक का वाक्य बना है। कहते हैं दलाश ग्राम के अति समीप के ग्राम में एक घग्गी नाम का बड़ा प्रसिद्ध जादूगर रहता था। उससे भूत पिशाच बहुत डरा करते थे। कहते हैं कि जब कभी यह भूत-पिशाच अपने अदृश्य रूप में अपना उदण्ड मचाते थे तो भूत-पिशाच ग्राम्य बोली में वर्णन अतीत वाक्य को उच्चारते थे। अर्थात् घग्गी के जादू के चमत्कार से वह बहुत भयभीत होते थे। अतः घग्गी के नांम से भी घबराते थे। आज भी यदि कोई व्यक्ति विशेष बेहोश होता है और चार पांच दिन तक यही हालत बनी रहती है। तो आज कुल्वी जनपदों में रह रहे भोले-भाले लोग यही कहते हैं कि अमुक देवी या देवते के रूश्ट होने का ही यह हेतु है। अत: झाड़ा इत्यादि करके आज भी वह लोग यही कहते हैं कि अमुक देवी या देवते के चौऊथामैं (आॅगन) में जाने से ही यह सब बाते हल हो सकती हैं। देवी देवताओं एवं भूत-पिशाच के अन्ध-विश्वासों में लोकाचार विचार आवद्ध हैं।

जब कभी इन टौने-टोटकों से इनकी आशाओ एवं आकांक्षाओं को परिपक्व रूप मिलता है तो उन का विश्वास और भी अटूट हो जाता है। आउटर सिराज के कुछ ब्राह्मण जनपदों में एक ऐसे देवता की बात भी आती है जो शिव कल्याण रूप में कम होता है, विनाश रूप में अधिक बातें उसके विषय में प्रचल्लित हैं। यह विशेष देवता घोर शवारी के रूप में प्रसिद्ध है। पर आज इस देवता का कहीं नामो निशां भी नहीं। किन्तु कहते हैं यह ग्राम के ईर्द-गिर्द चक्कर लगाता था और आगे-आगे देव मुख एक व्यक्ति विशेष बैठता था, जो हाथ हिलाता रहता था अर्थात 'हट जाओ' जो समक्ष ही रहता था देव मुख व्यक्ति के पीछे एक भयानक शक्ल सी होती थी जो कोई उसके सामने आ जाता तो वह मृत्यु का ग्रास बन जाता था। लेकिन यह घोर-शवारी भी शिव रूप में उस प्राचीन समय में जन -जीवन की राजा के समान रक्षा करता था। यह सांयकाल में अधिक चलता हुआ दृष्टिगोचर होता था। ऐसी किवदन्ती जन-साधारण में प्रच्चलित है।

उपरोक्त बातों का जब हम निष्कर्ष निकालते हैं तो ऐसा लगता है कि जन-जीवन आचार-व्यवहार सब देव, भूत, पिशाच इत्यादि विश्वासों पर आश्रित है। इन सब बातों के उदाहरण लोक-गीतों में द्रष्टव्य हैं :-

तैया देई आसा अ —
सारी गला—
सता आसा कुलजे देवी —
तैरे सहारे हमें पला —
चाला तैरे चौऊधामैं आलै —
तैवे होणु निवारणा—
कै हुई गलती फलती --
कै हुई बिसरा -
सबे गला जाणनी जांचणी
नैंई ता छाई रहणी —
धरा दी एऊ सारी —
अ क्रांति ।

भाव यह है कि अमूक देवी का ही यह प्रकोप है। देवी हमारे कुल की है उसके सहारे हमारा पालन होता है। हमें उसके आंगन में जाकर मान्यता में हुई भूल-चूक के प्रति पश्चाताप कर लेना चाहिये।

अपने देवताओं के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा होती है। आदि-व्याधी, सुख-दुःखों का निवारण देवी-देवताओं एवं टौने टौटकों के ईदगिर्द ही होता है। शायद यह टौने-टौटके सारे भारत में ही प्रचल्लित हैं। महाकवि तुलसीदास जी ने अपने जन्म की तुलना एक टौटके से की है। उनका कहना है कि—

स्वस्थ के कारणे तज्यो
टौटकों समा

तो यह टौने-टोटके कुल्वी उपज तो नहीं किन्तु उनके विश्बास का आधार अवश्य बन गए है। आज भी जनपदों मे यदि किसी व्यक्ति विशेष की गाय बछड़े को जन्म देती है तो बछड़ा मर जाता है या गाय कम दूध देती है तो वह लोग समझने लगते हैं कि किसी की कुदृष्टि का कोप भाजन होना पड़ा है या किसी ने कुछ खिला दिया है, जादू कर दिया है इत्यादि-इत्यादि बातें।

कुल्लू आउटर सिराज के कुछ जनपदो में यह परम्परा है कि विवाह से कुछ समय पूर्व वर को विशेष स्नान कराया जाता है। वे लोग उस वर को उस समय नारायण का रूप मानते हैं। उस समय नारियां यह गाना गाती हैं :

बाड़ो नरायणा करिये स्नाना---
आणे मेरे दादुआ गंगा तीरो पाणी---
वाड़ो नरायण करिये स्नाना---
बाबु बोला भाईयै---
आणे गंगा तीरो पाणी---
बाड़ो नरायण करिये स्नाना---

और जब वधु स्नान होता है तो उसे उमा की संज्ञा से पुकारते हैं।

डूलो-डूलो गौरिये---
पाणी तपाऊयो---
विष्णु नरायणा करिये
स्नाना-----।

लोक विश्वास देवी-देवताओं के आचार-बिचार की मान्यताओं पर अवलम्बित हैं। कभी यह बातें बडी ही सत्य प्रतीत होती हैं। वास्तव में इन भोले-भाले लोगों के हृदय में पाप नाम का बीज तनिक भी उगता दृष्टिगत नहीं होता। आज भी यदि कोई अनजाने में कोई अपराध हो जाता है तो यह लोग उस अपराध का हार्दिक पश्चाताप करते हैं।

यदि किसी से जाने-अनजाने में किसी पशु–बिल्ली इत्यादि की हत्या हो जाये तो यह लोग एक खाई खोद देते हैं और स्वयमेव तीत-चार दिन तक उस खाई में पड़े रहते हैं और जब तक उस मिट्टी पर बीज इत्यादि नहीं उग आते तब तक वह खाई में ही रहते हैं। यह लोक-विश्वास हृदय की पवित्रता है और पुलिस-प्रशासन के न्याय-दण्डो से महान् है और कुल्वी जन-जीवन के हृदय की सात्त्विकता का भी प्रतीक है।

कुल्लू में खेतीबाड़ी सम्बन्धी जितने लोक चेटक पाए जाते हैं उतने कहीं भी नहीं। खेत में हल लगाने से पहले आटे का पेड़ा बना कर उसमें टीका (कूंगू) लगा कर धूप जलाकर ईष्ट देवताओं को प्रणाम किया जाता है तथा उस पेड़े को तोड़ कर चारो दिशाओं में फैंका जाता है स्थानीस भाषा में इसे 'पिंदली शेटणा' कहते हैं।

यदि फसल खेत के बीच न निकले अर्थात् बीच का कुछ भाग खाली रह जाए तो इसका अर्थ यह लिया जाता है कि कुछ अशुभ घटना घटने वाली है।

फसल की कटाई के समय यदि दो व्यक्तियों को दरांतियां एक दूसरे की दरांती के साथ लग जाए तो अशुभ माना जाता है।

इतना ही नहीं वृक्षों में बेमौसम फूल ग्राना व फल लगना किसी विनाश का द्योतक माना गया है। कुल्लू के लोग फसल की कटाई व घास की कटाई के लिए भी शुभ दिन को अधिक महत्ता देते हैं। यह सब कुछ समृद्धि के लिए ही ग्रावश्यक समझा जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के खेती सम्बन्धी लोक विश्वास लोगों में प्रचलित है।

खेती के अतिरिक्त पशुओं सम्बन्धी कई प्रकार के टोटके प्रयोग में लाए जाते हैं। पशुओं को नमक देने के लिए भी कुछ बार निश्चित किए गए है। यदि छाछ या दूध किसी को देना हो तो नजर न लगने के लिए उसमें साबुत मिर्चें या कोयला डाल दिए जाते हैं।

ग्रामीण लोगों को कई बार यह समस्या ग्रा जाती है कि मक्खन ठीक तरह से नहीं निकल पाता। अधिकतर लोग इसे कुदृष्टि का प्रकोप मानते हैं। दूध बिलोने में इस प्रकार की कठिनाई ग्राए तो कहते है कि "चौरटी बिगड़ी" चौरटी दूध बिलौने वाले मिट्टी के बड़े बर्तन को कहा जाता हैं। उसे ठीक करने के लिए उस बर्तन को भली भांति धोया जाता है सुखाया जाता है तथा मिर्चों की धूनी जला कर उल्टा करके उस बर्तन को ऊपर रख देते हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि कई बार ठीक भी हो जाता है।

कुल्लूई समाज में स्थान स्थान पर भिन्न २ विश्वास देखने को मिलते है। किसी भी त्यौहार या शुभ दिन को कपड़े धोना या घर की लिपाई करना नितांत बुरा समझा जाता है। कुल्लू में प्रायः कच्चे मकान हैं इसलिए थोड़े दिनों बाद लिपाई की जाती है। लिपाई करते समय जो मिट्टी बिघोई जाती है उसमें फूल व द्रव जरुर रखते है। जब किसी की मृत्यु होने पर घर की लिपाई की जाती है तो उसमें फूल व द्रव नहीं रखी जाती।

इसी प्रकार जब त्यौहार में भल्ले बनाए जाते हैं तो उसमें बनाते समय छेद जरुर डाला जाता है। परन्तु अशुभ दिन के लिए जो भल्ले बनाए जाते है उसमें छेद बिल्कुल नहीं डालते।

कुल्लूई जन जीवन में घर से बाहर कहीं दूर जाने के लिए कुछ दिन अशुभ माने गए हैं रविवार को घर से बाहर जाने के सम्बन्ध में यह कहावत कही जाती है :

"नौठे तुग्रारे हटीया नीं ग्राए घौरे दुग्रारे। अर्थात् रविवार को परिवार के बीच से नहीं जाना चाहिए। जब कोई घर से जाए तो कपड़े धोना हजामत करना तथा लिपाई करना आदि ठीक नहीं माना जाता। स्त्री को बाल धोने व पुरुष को हजामत करवाने के लिए भी कुछ दिनों को अशुभ माना जाता है। जिस मनुष्य का जन्म जिस महीने में हुआ हो उस महीने हजामत नहीं करवाता, उसके लिए शादी के लिए भी वह महीना जिसे उसका जामणु महीना कहा जाता है निषिद्ध होता है।

कुल्लूई समाज में बिल्ली का लड़ना व रोना बीमारी का द्यौत्तक माना जाता है। कुत्ते का रोना या किसी मनुष्य के आगे अंगड़ाई लेना भी अशुभ शगुन समझा जाता है। उल्लू की आवाज को उजड़् की आवाज से मिलाया जाता है अर्थात् यह समझा जाता है कि जहां उल्लू बोल रहा है वहां उजाड़ होने वाला है इस विश्वास को 1905 के भूकम्प ने कुल्लू के लोगों को पक्का किया था। कहा जाता है कि इन दिनों उल्लुओं का बहुत बोलबाला हो गया था।

दो सांपों का इकट्ठे दिखाई देना या सांप का चूहे को निगलते देखना उस देखने वाले व्यक्ति के लिए अशुभ समझा जाता है। इसके लिए यह विधान बताया गया है कि चांदी का सांप बना कर नदी में प्रवाह कर देना चाहिए।

कुल्लू में छोटे बच्चों का विशेष ध्यान दिया जाता है अधिकतर टूने टोटकों से। यदि बच्चा रोने से बन्द न हो तो उसके सिर पर लाल मिर्च घुमाई जाती है फिर उन्हें अग्नि में डाला जाता है। यदि उन मिर्चों से छींके न आए तो यह समझा जाता है कि उस पर कुदृष्टि का प्रकोप है। बच्चे के माथे पर काली बिन्दी इसी कुदृष्टि से बचने के लिए लगाई जाती है। यदि बच्चा दूध पीना छोड़ दे तो भी इसका उपचार लोकविश्वास के अनुसार किया जाता है। कई ऐसे भी उदाहरण मिले हैं जिसमें बच्चे को निमोनिया होने से उसकी बुड़ाबुड़ाहट से यह अनुमान लगाना कि देवी प्रकोप है और उससे हाथ धो बैठना। यदि बच्चों के दांत ऊपर की ओर से निकले तो भी विधान किया जाता है।

कुल्लू में राक्षसों का व प्रेतआत्माओं का भी काफी बोलबाला रहा है। इन राक्षसों को भगाने के लिए एक त्यौहार मनाया जाता है जिस त्यौहार को कहते है "डायणी रा साजा।" पुरानी कथा के अनुसार इस दिन सभी राक्षस व राक्षसियां पेड़् (विशेष अनाज रखने का बर्तन) में बैठ कर गोघड़धार जाती हैं। वहां उनकी आपस में लड़ाई होती है जो हार जाए उसे बलि के रुप में किसी को भी देना पड़ता है। एक बार एक राक्षसी ने अपना वायदा पूरा नहीं किया तो कहते हैं कि रोटी बनाते २ उसका हाथ तवे में चिपक गया और वह कहती है कि वह आज त्यौहार की रोटियां लेकर मेरे भाई ने आना है मैं उसकी बलि दे दूंगी। वह यह कह रही थी कि भाई घर के बाहर पहुँचा सुन रहा था और वह वहां से भाग गया। इस संग्रात को सभी व्यक्ति अपने अपने घरों में डंगरे बांधने वाले कमरे में कांटेदार झाड़ीं की एक टहनी जिसे भेखलू कहते हैं इसी विश्वास से लगाते हैं कि घर में इस प्रकार के राक्षसों का बास न हो सके। इस दिन छोटे २ बच्चे भी उन्हीं टहनियों को लेकर यह उच्चारण करते हैं: "डायणियों रोंडो हुशाहूरा गोघड़धारा बै जात हो।"

कुल्लू के लोगों में देवता के प्रति अगाध श्रद्धा होने के कारण यदि कोई व्यक्ति अपनी मनोकामना पूर्ण होने के लिए देवी या देवता को बकरा देने का वायदा करता है तो वह मनो-कामना पूरी होने पर अपने वचनों से टल नहीं सकता।

कुल्लू के विश्वासों में छलेडा का भी विशेष स्थान है। पत्थर का गिरते दिखाई देना, ऊन के गोलों का चलना, किसी व्यक्ति का साथ चलते दिखाई देना, आवाज सुनाई देना आदि के अनुभव के उदाहरण आज भी सुनने को मिलते है। इन्हें आधुनिक युग में चाहे मानसिक भ्रम कह सकते हैं चाहे मनोवैज्ञानिक। कुल्लू के जन-जीवन में गिट्ठू राक्षस के सम्बन्ध में भी किवदन्ती है कि जिस बच्चे की मृत्यु उसके मुंड़न संस्कार होने से पहले हो जाए तो जहां उसे दफनाया जाता है वहां वह आग की अंगीठी लेकर चलता है जो लोगों को जलती बुझती आग दिखाई देती है परन्तु आधुनिक युग में तो इसका कारण फास्फोरस का जलना ही माना जाता है।

कुल्लूई जनपद में इन बातों की बहुलता होने का मुख्य कारण यहां के लोगों की साधारणता व भोलापन है। लोगों की देवी देवता में अगाध श्रद्धा होने के कारण कुछ अन्धविश्वासों को दूर करना इतना सरल नहीं। कुल्लू का गांव मलाणा का जनपद भी विशेष उल्लेखनीय है। मलाणा का जनपद इस क्षेत्र में अधिक जटिल है। यहां के धार्मिक विश्वास इनके राजनीतिक क्षेत्र (विशेष प्रकार का लोकतन्त्र) में भी प्रवेश कर गए है। मलाणा के इतिहास में इस प्रकार की बातों को पढ़कर कौतूहल होता है।

यद्यपि कुल्लूई जनपद में आऊटर सिराज, इन्नर सिराज, कुल्लू खास तथा मलाणा क्षेत्र में लोकाचार, लोक विश्वास, टूने-टोटके व लोक चेटक में कुछ भिन्नता है परन्तु सारे क्षेत्र का आधार देवी देवताओं पर ही है।

गांव डोभी,
कुल्लू।

★★★
★★
★

कुलुई उत्सव, त्योहार और पर्व

● बलदेव कुमार

कुल्लू के उत्सवों, त्योहारों और पर्वों का सामान्य परिचय देते हुए इन्हें तीन भागों में बांटा जा सकता है।

१) ऐसे त्योहार-पर्वोत्सव जो देश के अन्य भागों के समान मनाए जाते हैं;

२) ऐसे त्योहार आदि जो देश के अन्य भागों में भी मनाए जाते हैं, परन्तु इन में साधारण स्थानीय परिवर्तन आया है।

३) ऐसे त्योहार आदि जो कुल्लू में विशिष्ट हैं तथा अन्यत्र नहीं मनाए जाते।

प्रथम श्रेणी में होली, दीवाली, रक्षाबन्धन जैसे त्योहार तथा स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस तथा हिमाचल दिवस आदि आयोजन हैं जो सामान्यतः ठीक उसी ढंग से मनाए जाते हैं जैसे देश -प्रदेश के अन्य भागों में उन का प्रचलन है। दूसरी श्रेणी में शिवरात्रि, दुशहरा, जन्म-अष्टमी, बंसती और वैसाखी आदि मेले त्योहार है जो देश प्रदेश के अन्य भागों की तरह मनाए तो जाते हैं परन्तु उन में स्थानीय रिवाजों के अनुसार परिवर्तन आया है। परन्तु इस विषय में विशेष रूचि और महत्त्व के वे उत्सव त्योहार और पर्व है जिन का देश के अन्य भागों में प्रचलन नहीं है। हिमाचल प्रदेश के कुछ एक भागों में इन में से कुछेक मिलने अवश्य हैं परन्तु उन के आयोजन में बहुत भिन्नता है। नीचे कुल्लू के वर्ष भर के त्योहारों तथा विशेष उत्सवों का सामान्य परिचय दिया जाता है :—

१. **जेठा विरशू** : वर्ष का आरम्भ प्रथम चैत से होता है और वही दिन कुल्लू में अच्छी फसलों की कामना करते हुए जेठा विरशू के रूप मे मनाया जाता है, यद्यपि अभी तक खेत में जौ, गेहूं की फसलें कच्ची होती है। किसान अपने खेतों की नई फसल की सम्पन्नता के लिए देवी-देवताओं को पूजा-पाठ से मनाते हैं। तभी इसे जेठा विरशू अर्थात् ज्येष्ठ वैसाखी के नाम से पुकारा जाता है। सुवह ही घर में गृह देवता की पूजा की जाती है और दिन को गांव-गांव में स्थानीय देवता निकलते हैं।

2 नोंग्रां साजा :

चैत मास का प्रथम शुक्ल पक्ष कुल्लू में नौग्रां साजा अर्थात् नया संवत् के रूप में मनाया जाता है । परन्तु अधिकतर लोग इसे गुडला साजा के नाम से जानते हैं । गुड़ला का अर्थ है मीठा; जिसका कि अपना ही अभिप्राय: है, अर्थात् हम साल भर मीठा खाते रहें । मतलब हमारा साल खुशी खुशी बीते । लोग प्रातः काल ही बिस्तर छोड़ने से पहले गुड़ अथवा शाम को बनाया हलवा खाते हैं । कहना है कि कुछ सुनने और किसी की शक्ल देखने से पहले ही मीठी चीज खा लेनी चाहिए और इसलिए प्राय: लोग विशेषत: छोटे बच्चे शाम को सोती बार अपने सराहने के नीचे गुड़ इत्यादि रखते हैं । दिन भर नमकीन नहीं खाया जाता । अधिकतर लोग इस दिन विशेष भोजन बनाते हैं । आटे में गुड़ या खाण्ड डाल कर उसे पतला बना कर पकाया जाता है जोकि पक कर लेवी की तरह बन जाता है । इसे लेहुरा कहते हैं । इसी तरह कणक के आटे का पानी में पतला घोल बनाया जाता है । तवे पर घी फैंक कर इस घोल को डाल देते हैं और पतली २ रोटियां बन जाती हैं । इन्हें चिल्हड़े कहा जाता है । तभी इस त्यौहार को 'चिल्हड़ा साजा' भी कहा जाता है ।

इसी मास के कुछ अन्य मेले है भूठी के गिल्हड़ू थाना री जाच, नगर का छिज, नगर का देवी त्रिपुरा सुंदरी और पटंती देवी का मिलन इत्यादि ।

3. कोन्हा बिरशू :

13 अप्रैल का दिन कौन नहीं मनाता । यह दिन देश भर में बैशाखी के रूप में मनाया जाता है. और यही है प्रथम बैशाख का दिन जिसे कुलुई में कोन्हा बिरशू (संस्कृत के कनिष्ठ से कोन्हा । जेठा बिरशू से भिन्न) कहते हैं । फिर भी अन्यत्र बैसाखी की तरह इस दिन को कुल्लू में नई फसल की शुरूआत के रूप में नहीं माना जाता है । इस दिन गांवों में देवताओ के मन्दिरों में मेले लगते हैं । लोग इस दिन घरों में भल्ले बनाते है, जिन्हेंस्थानीय बोली में बौड़े कहते हैं । इस मेले में 'जौरा'' के फूल, जो कि जौ के केवल अन्धेरे में उगाए जाते हैं, लोगों द्वारा टोपी पर और कान के पीछे लगाये जाते हैं और देवताओं को भी चढ़ाये जाते हैं । दिन को लोग एक दूसरे के घर जा कर महफिल उड़ाते हैं ।

4. सलाहर :

बैशाख महीने के शुक्ल पक्ष के प्रथम वीरवार या सोमवार को यह त्यौहार मनाया जाता है । यह अन्यत्र बैशाखी की तरह कुल्लू में फसलों का एक त्यौहार है । सलाहर शब्द संस्कृत शब्द शिल-आहार के संयोग "शिलाहार" से सलाहार बना है अर्थात् सिलों का आहार । इन दिनों जौ और गेहूँ के सिल्ले निकल जाते हैं । लोग घरों से दूर ऊंचे पर्वतों में या अपने खेतों में जाकर भोजन तैयार करते हैं और देवताओं को प्रसाद चढ़ाते हैं और घरों में आकर उस

पूजा को अन्तिम रूप दिया जाता है। इसी दिन खेतों में पहली बार दरांती चलाई जाती है। नये सिल्लों के दाने चावल के साथ पकाये जाते हैं और गृह देवता को चढ़ाये जाता है। उस के पश्चात यह प्रसाद और नई फसल की मिल्लें ग्राम देवता के मन्दिर में भी चढ़ाये जाते हैं। सिल्लों को घरों के दरवाजे पर भी चिपकाया जाता है। उस दिन के भोजन में यही पकाया हुआ भात खाया जाता है, और उस नई उपज का पहला ग्रास लेने से पहले हर व्यक्ति "आगलू देई" कहता है, अर्थात 'अगले वर्ष भी दे देना' और अन्य लोग उत्तर में कहते हैं, "अगलू भी खाई" अर्थात् अगले वर्ष भी खाना।" निश्चित रूप से यह एक तरह से देवता से प्रार्थना है। इसी दिन जठानी के कलरूसी नारायण देवता का भूठी का सलाहर मेला बहुत प्रसिद्ध है। इस दिन देवता की सवारी जठानी से भल्याणी, खरका ग्रां और रोपड़ी से होती हुई भूठी जाती है। दिन भर वहां मेला लगता है और शाम को देवता वापिस रोपड़ी में अपने उप-मन्दिर में ठहरता है। आते जाते वहां पर सिड़ू खिलाये जाते हैं।

5. शाढ़ी जाच शाढ़नू :

आषाढ़ महीने में कुल्लू भर में स्थान-स्थान पर विभिन्न देवी-देवताओं के मेले होते हैं। इन मेलों को प्राय: शाढ़नू या शाढ़ी जात्र अर्थात् 'आषढ़ के मेले' कहा जाता है। नगर की प्रसिद्ध शाढ़ी जाच प्राय: सभी अन्य मेलों से पहले मनाई जाती है जो स्थानीय प्रसिद्ध देवी त्रिपुरा ासुंदरी का विख्यात मेला है और यह मेला सप्ताह भर चला रहता है। शाढ़ी जात्र कहलाते हुए भी यह मेला प्राय: 5 से 10 ज्येष्ठ तक चलता है। त्रिपुरा के साथ-साथ गांव की दूसरी देवी भटंती भी इन दिनों निकलती है। इन्हीं मेलों में भूंतर का तारानाहुली मेला भी बड़ा प्रसिद्ध है। नाहुली से अभिप्राय नलवाड़ी से है। भूंतर नाहुली या तारानाहुली दो दिन तक चलती है और इस क्षेत्र के केन्द्र में होने के नाते यह मेला पुराने समय से लेकर व्यापार का केन्द्र रहा है। कुल्लू में पशु-मेला का भी यह प्रसिद्ध उदाहरण है।

6. काहिका

श्रावण महीना कुल्लू में मेलों का मुख्य महीना है और लगभग सारे महीने में कहीं न कहीं कोई न कोई मेला लगा रहता है इन मेलों को शाउण जाच कहा जाता है, जिनमें "काहिके सर्वप्रसिद्ध हैं। कुल्लू में काहिके का विशेष महत्त्व है। इन में शिरढ़ काहिका, मलाणा काहिका, तारापुर काहिका, जाणा नयान इत्यादि बड़े प्रसिद्ध हैं। शिरढ़ काहिका हर तीसरे साल मनाया जाता है। और तारापुर काहिका हर चौथे वर्ष होता है। तारापुर काहिका के शेष तीन वर्षों में शाउण जात्र अलग-अलग नाम से मनायी जाती है। पहले वर्ष के मेले को 'होम' कहते हैं जो भलयाणी गांव में होता है। दूसरे वर्ष का मेला 'थंदोर' कहलाता है जो खारका ग्रां में आयोजित होता है और तीसरे वर्ष का मेला सलोखरा कहलाता है जिसमें देवता अपने पूरे क्षेत्र की बाजे गाजे के साथ परिक्रमा करता है।

काहिका अन्य मेलों से भिन्न मेला है। देवता के मन्दिर के मदान में एक कोने पर चार खम्बे गाड़ दिये जाते हैं। उन के ऊपर कपड़ा ताना जाता है। उसके नीचे कुछ अनाज, घड़े में जौ का आटा आदि रखते हैं। 'नड़' (संस्कृत हट) जाति का एक पुरूष और एक स्त्री वहां बैठकर एक लम्बी गाथा सुनाना आरम्भ करते हैं। चारों ओर देवता और उस के पुजारी और चेले बैठे होते हैं। समय-समय पर वे सब खड़े हो जाते हैं। नड़ स्त्री चक्कर में नाच रहे देवताओं के सभी चेलों और पुजारियों के मुंह पर हाथ से दिलासा देती है। जब तक गाथा पूरी न हो यह क्रम चलता रहता है। गाथा समाप्त होने पर देवता का चेला पुरूष नड़ के मुंह में मंत्र बोल कर बकरे के कलेजे का टुकडा डालता है जिस से वह बेहोश हो जाता है। उसे दो अन्य नड़ पीठ पर उठाते हैं और देवता उन्हें साथ लेकर नाचते हुए मंदिर की तीन बार परिक्रमा करते हैं। अन्य नड़ चलते-चलते बेहुदा मखौल करते है। अन्त में बेहोश नड़ को वापिस वहीं लाया जाता है। देवते का चेला -"गूर" उसके मुंह पर मन्त्र पढ़ता है और पानी के छींटे डालता है और नड़ को वापिस होश में लाता है। और मेला भी समाप्त हो जाता है।

7. शनोहली (डाइणी ठराणे रा साजा) :

भूत-प्रेत दूत-पिशाच, डाइरण-जौछरण आदि अनेक प्रकार की प्रेतात्माएं पुराने समय से ले कर इस समस्त पहाड़ी क्षेत्र को सताती रही हैं। प्रथम भादों इसीलिए इन प्रेतात्माओं को भगाने के लिए एक मेले के रूप में मनाया जाता है। इस मेले को प्रायः शनोहली के नाम से पुकारा जाता है जिसमें लग की शनोहली बड़ी प्रसिद्ध है। यहां देवी का गूर मेले में आये जात्रुओं को बिच्छु बूटी से पीटता है। यह दिन घर-घर में भी एक त्यौहार के रूप में मनाया जाता है जिसे डाइणी ठराणे रा साजा कहा जाता है। कहा जाता है कि मण्डी में 'घोगरू धार' एक पर्वत है जहां इस दिन सब प्रेतात्माएं इक्ठा होती हैं। इसी दिन सायं काल को जब घर के सभी सदस्य और विभिन्न प्रकार के पालतु पशु घरों में प्रवेश कर जाते हैं तो अपने २ घर की छत पर जाकर एक एक आदमी गूर द्वारा मंत्री हुई सरसों के दाने फैंकता है और जोर-जोर से पुकारता है : -

डाइणीए रण्डे घोगरू धारा-बे जा,
आला बौठू खा
आपणे भाई बे भारी ने।

अर्थात् "हे दुष्ट डाइण तू हमारे घर से भाग और घोगरू धार पर चली जा, अपने भाई को बोझ उठाने के लिए ले जा और कभी वापिस न आ।" जिन के घर में बंदूके इत्यादि होती हैं वे फोकी बंदूके चलाते हैं। उसके घर के कौने कौने में मंत्री हुई सरसों को फैंक कर प्रेतात्माओं को बाहर निकाला जाता है। छत के चारों कोनों पर मंत्री हुई सरसो, बेखल

(एक विशेष कांटेदार झाड़ी) और कुटा हुआ चकमक पत्थर (छोरगण) आदि को गोबर के साथ चिपकाया जाता है।

8. बराखड़ी :

स्थानीय भाषा में रक्षा बन्धन को बराखड़ी कहते हैं और यह वैसे ही मनाया जाता है जैसे देश के अन्य स्थानों पर। ग्रामीण क्षेत्र में बाहन की बिजाय गांव के ब्राह्मण रखड़ी बांधते हैं और लोग उन्हें दान देते हैं।

9. बरौती रा साजा :

जन्माष्टमी को कुल्लू में बरौती रा साजा अर्थात् 'व्रत रखने का त्यौहार' कहते है। लोग व्रत रखते हैं। सब के मन में यही धारणा होती है कि वे सारे दिन पुण्य और कल्याण का काम करें। इसलिए अधिकतर लोग सवेरे उठकर सब से पहले सार्वजनिक कार्य करते है। करीब-करीब घर का हर सदस्य सुबह बिना मुंह में पानी डाले या भोजन खाये इस प्रकार के सामाजिक हित के कार्य करने निकल पड़ते है। रास्ता ठीक करना, पानी के चश्में की मुरम्मत करना, गांव की गलियां साफ करना, टूटा पुल ठीक करना इत्यादि सर्वकल्याण के काम इसी दिन सम्पन्न हो जाते हैं। पूजा पाठ, कल्याणकारी काम करने के पश्चात भोजन किया जाता है। इस दिन का खास भोजन माश की बनी बेड़वीं होती है, बेड़वीं के साथ घी का होना भी आवश्यक होता है। इसी कारण इस त्यौहार को "बेड़वीं साजा" भी कहा जाता है। इस दिन किसी को गाली गलोच निकालना, बुरा कहना, गुस्सा करना, लड़ाई झगड़ा करना बहुत अपशकुन माना जाता है।

10. भाद्रू री बिह :

भादों महीने की बीस तारीख को दुःख और कष्ट से छुटकारा पाने के दिन के रुप में मनाया जाता है। इस दिन इष्टदेव की पूजा की जाती है। जिन लोगों को चिरकालीन लम्बा रोग हो, वे 19वें दिन ही ऊंचे-ऊंचे पर्वतों में जाकर रहते हैं और सुबह उठते ही पर्वत की घास पर पड़ी ओस को पीते है यद्यपि इन पर्वतों पर विभिन्न प्रकार की जड़ी बूटियां हैं, परन्तु अब लोगों को इन सब जड़ी बूटियों का कोई ज्ञान नहीं है। इसलिए ओस खाते अचानक जिस किसी के मुंह में अच्छी जड़ी बूटी लग गई उसका इलाज हो जाता है। इस प्रकार के कई चमत्कारी असर हर साल देखने को मिलते है। बांझपन को दूर करने का तो यह एक निश्चित उपचार माना जाता है।

इसी दिन कई मेले इत्यादि भी होते हैं जिनमें नगर का फवारी बाबा का मेला बड़ा प्रसिद्ध है। गांव के बाहर घनी झाड़ियों के बीच एक गुफा है वहां पर फवारी बाबा रहा करता था और कहा जाता है, कि वह हर रोज उस गुफा से होता हुआ पहाड़ी के दूसरी तरफ

मणीकरण नहाने जाया करता था और प्राय: देरी से लौटता था जिससे उसके सेवक प्रोहित को सदा भूख सताया करती थी। एक दिन उसने गुफाद्वार पर लाख लगा दी। जब फबारी बाबा वापिस आये और यह सब देखा तो उन्होंने तब से जाना छोड़ दिया और गुफा का वह रास्ता सदा के लिए बन्द कर दिया। आजकल यहां पर एक पानी का चश्मा है। लोग 19 भादों की शाम को ही बाबा के मन्दिर में जाते हैं और सारी रात पूजा-पाठ चलता है। सवेरे हर एक आदमी का यही प्रयत्न होता है कि वह सबसे पहले इस चश्में में नहाए। इसी दिन मन्दिर का महंत लोगों को चावल की दावत देता है।

11. शौइरी साज़ा :

शौइरी अर्थात् सैरी का त्यौहार एक फसली त्यौहार है और हिमाचल प्रदेश के हर भाग में यह बड़ी धूम धाम से मनाया जाता है। बच्चे और बूढ़े इस दिन एक दूसरे को दूब और फूल बाँटते हैं। इन फूलों को टोपी पर और कान के पीछे लगाया जाता है। इस दिन बांटे जाने वाले इन फूलों का विशेष महत्त्व है तभी तो लोक गीत में भी कहा गया है।

साज़ा आऊ शोइरी, फूल फूली गलदोदी, तू आणी जोता रा ल्होसर, हाऊं बाल्हे री बोदी।

अर्थात् जोत पर पाये जाने वाले ल्होसर से लेकर मैदान में पाये जाने वाले बोदी तक हर प्रकार के फूल इस दिन एक दूसरे को बांटे जाते हैं और साथ ही आदर-सत्कार में राम-राम ढलकी, नमस्ते इत्यादि किया जाता है। बच्चों को इन फूलों और सत्कार करने के बदले अखरोट दिये जाते हैं। घर घर में इस दिन भल्ले (बौड़े) पकाये जाते हैं। दिन को देवता के मंदिर में मेले लगते हैं।

12 दसमी :

कुल्लू में दुशहरे का मेला शेष भारत के दुशहरे के साथ ही मनाया जाता है, परन्तु कुल्लू में इसे मनाने का एक अनूठा ही ढंग हैं। परन्तु यह कुल्लू का दुशहरा केवल कुल्लू शहर के ढालपुर मैदान तक ही सीमित नहीं है, बल्कि देहातों में यह स्थान स्थान पर मनाया जाता हैं। परन्तु देहातों में इसे दुशहरा नहीं,दसमी (दशमी) कहा जाता है। स्थानीय बोली में कुल्लू के दुशहरे को विदा दसमी (विजय दशमी) कहा जाता है। जिस दिन कुल्लू के दुशहरे में लंका जलाई जाती है, उसी दिन विभिन्न स्थानों पर लंका जलाई जाती है।

13. मोंघर पुन्:

मार्गशीर्ष की पूर्णिमा का दिन वीर और थान देवताओं की पूजा का दिन हैं तभी तो इसे वीर पुजाई का नाम भी दिया जाता है। वीर देवताओं के अन्य देवताओं की तरह रथ नहीं होते। जिन वीर आत्माओं ने जनता को कष्टों और दु:खों से बचाया है, महान् आपत्तियों से मुक्ति दिलाई है वे

ही समाज में पूजा के पात्र हुए हैं। इन्हीं की पूजा के लिए यह दिन चुना गया है। जिन वीर-थान देवताओं के पास अपनी जमीन (माफी) है, वे इस दिन अपने खर्च पर अपनी राइशी को भोजन देते हैं। अन्य के उपासक अपना आटा चावल लेकर उन के मंदिर में बनाते हैं, देवताओं को चढ़ाते हैं और सब मिलकर स्वयं भी खाते हैं।

14. पौषा री पन्द्रह :

दुशहरे के अन्तिम दिन से देहाती नाटक "हरण" का आरम्भ होता है और पौष की पंद्रह प्रविष्टे तक चलता है। इस नाटक को वर्ष के अन्य महीने में खेलने की इजाजत नहीं होती। यह नाटक केवल रात को खेला जाता है। इस में गांव के लोग टोली बनाकर रात को हर गांव में जाते हैं। हर घर के बाहर 'हरण' डालते है—नाचते हैं, स्वांग करते हैं और आगे बढ़ जाते हैं। हर घर वाला अपनी इच्छानुसार उनको अन्न देता है। पन्द्रह पौष इस नाटक का अन्तिम दिन होता है और उस दिन गांव वाले एकत्रित धन और अनाज से गांव में ज़ियाफत करते हैं। सारे दिन आमोद-प्रमोद रहता है, नाच-गाना चलता है। जिन गाँवों में उस वर्ष "हरण" नाटक न रचाया गया हो वे भी इस दिन आपस में अंशदान ले-देकर इसी तरह का मनोरंजन और जल-पान का आयोजन करते हैं।

इसी दिन से माघ महीने की दियाली का आरम्भ होता है। कुलुई समाज में पौष और माघ के महीने उन जातियों की याद के लिये निर्धारित हैं, जिन्होंने मानव जाति को बहुत सताया होगा। इन महीनों के मेले और त्यौहार ही कुछ इस प्रकार के है जिनमें गाली-गलोच और अश्लील व्यवहार होते है। ऐसे मेलों का एक उदाहरण नगर गनेड़ है। यह पौष मास की अमावश के लगभग चार दिन बाद मनाया जाता है। एक आदमी के सिर पर बहुत पुराने भेड़े के सींग लगाये जाते हैं और उस आदमी को मूसल पर चढ़ा कर शेष आदमी मूसल को कन्धे पर उठा कर उसे नचाते हैं, गाते हैं, जगह-जगह घूमते हैं और साथ ही अश्लील गालियां निकाली जाती हैं। स्थानीय भाषा में इन्हें "भीहरू" कहते हैं। आम दिनों में भीहरू शब्द कहना ही अत्यन्त शर्मनाक समझा जाता है। परन्तु इस अवसर पर दी गई ये अश्लील गालियां बुरी नहीं समझी जाती। अब समय के साथ-साथ ये गालियां भी प्रायः बंद हो चुकी हैं।

15. दियाली या माघा रा साज़ा

माघ का एक प्रविष्ट ही दियाली का आरम्भ है। उस दिन रात को लोग माश के भल्ले (बड़े) बनाते हैं। खाना खाने के पश्चात लोग घर से बाहर "दियाली" बोलते हैं जिसमें वे शेष सात दिन के साजे में अधिक से अधिक मेहमानों के आने की आशा करते हैं। देर रात को गांव के लोग लकड़ियों की मिशालें लेकर घर से निकलते हैं और गांव में एक सांझे मैदान में इकट्ठा हो जाते है। सभी मिशालें इकट्ठी की जाती हैं और उस पर और लकड़ियां

डाली जाती हैं। जब आग का सेक पूरे जोर पर होता है तब सभी इस के गिर्द नाचते-कूदते हैं और गनेड़ की तरह अश्लील गाने गाते हैं। यदि यही "भीहरू" लय बदल बदल कर गाये जाये तो इन्हें "बांढू" कहा जाता है। अगला दिन "साजा" कहलाता है। उस दिन शौइरी साजा की तरह "जूबा" (दूब) बांटी जाती है और बच्चों को अखरोट दिये जाते है। दिन भर खाना-पीना, नाच गाना चलता है। दूसरे दिन को "काउड़-पंची" कहा जाता है। उस दिन प्रात: ही किसी का मुंह देखे बिना ही और कुछ बोले बगैर ही सबसे पहले भल्ले खाये जाते हैं। तीसरे दिन को "कौलू रा साजा" कहा जाता है, जिसमें मक्की के आटे और भांग के दानों से विशेष प्रकार का भोजन बनाया जाता है जिन्हें "कौलू" कहा जाता है। इसी प्रकार सात दिन तक लगातार दिन को खाना-पीना, नाच-गाना और रात को आग जलाना चलता रहता है। सातवें दिन को सतदियाला कहते हैं। उस दिन फिर से भल्ले बनाये जाते हैं।

16. त्राइण साजा

माघ महीने का आखरी दिन त्राइण साजा कहलाता है। यह गाली-गलोच और अश्लील गानों का अन्तिम दिन होता है। उस दिन दियाली की सभी रस्में दोहराई जाती हैं। इस दिन के पश्चात् बांढू और भीहरु लगाना अपशगुन माना जाता है। ऐसा करने पर दण्ड भी दिये जाते हैं।

17. बसंत पंचमी

बसंत का त्यौहार देश के विभिन्न भागों में बड़े उत्साह से मनाया जाता है। कुल्लू में भी बसंत का त्यौहार स्थानीय विशिष्टता लिये हुये बड़े उत्साह से मनाया जाता है। स्थानीय विशिष्टता में मुख्य देखने वाली बात यह है कि उस दिन ढालपुर के मैदान में मंहत वंश के एक नौजवान को गेरु रंग और पानी से पूर्णतया लाल किया जाता है। उस के शरीर से गेरुआ रंग बहने लगता है। तब एक विशेष समारोह में वह रघुनाथ की मूर्ति के साथ गाजा-बाजा सहित सुसज्जित रथ के गिर्द सात चक्कर काटता है। अंतिम चक्कर में वह रथ में लगे रस्से को खींचने के लिये हाथ लगाता है। परन्तु हाथ लगाते ही उसे छोड़ कर भीड़ में भाग निकलता है। रथ को खींचने का काम मेले के शेष लोग पूरा करते हैं। रथ को मैदान के बीच तक ले जा कर पुनः वापिस उसी स्थान पर लाया जाता है। गेरूए रंग से तर-बतर नौजवान भीड़ में सामने आये हर व्यक्ति को रंगता जाता है। उसके सामने कोई भेद भाव नहीं रहता और वह हर किसी को जो उसके सामने आए अपने शरीर के रंग से उसको रंग देता है। यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक उसके शरीर का रंग खत्म नहीं होता। उसकी बहादुरी इस बात पर निर्भर करती हैं कि उसने कितने व्यक्तियों बूढ़े, जवान, छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, लड़की-लड़के और बच्चों को रंगा है।

18. फागली :

माघ का महीना काला महीना माना जाता है। यह राक्षसों का महीना है। ज्यों ही

माघ समाप्त होता है, देवताओं के महीने आरम्भ होते हैं और इस में सब से अच्छा महीना फागुन का है। लगभग सभी देवता फागुन के महीने में किसी न किसी दिन निकलते हैं और अपना मेला लगाते हैं। माघ की रस्में और फागुन के मेले इस बात की ओर संकेत करते हैं कि प्राचीन समय में सम्भवतः राक्षसों का दौर रहा हो, और उन्हें लोगों ने देवताओं के सहयोग से माघ महीने में पूर्णतः नष्ट किया हो, और फिर फागुन में देवताओं का राज्य स्थापित हुआ हो। इस की पुष्टि इस बात से भी होती है कि फागुन महीने के मेलों "फागली" में देवते अपने खर्च पर जनता को भोजन खिलाते हैं और अपने अस्तित्व के बारे में गाथा सुनाते हैं जिन्हें "भारथा" कहते हैं। इन फागलियों में "रोपड़ी-फागली" भलयाणी और रुजग फागलियाँ बड़ी प्रसिद्ध है। रोपड़ी और रुजग में मेले में आये सारे लोगों को देवता की ओर से पकाए चावल खिलाए जाते हैं। रोपड़ी में यह फागली कतरूसी नारायण देवते की ओर से होती है और वहां अपनी भारथा में देवता 'सुखसागर' की पूरी कथा जबानी सुनाता है। दूसरे दिन देवता भलयाणी गांव में आता है। यहां साधारण मेला होता है। तीसरे दिन विश्राम का दिन होता है और चौथे दिन देवता खोपरी गांव जाता है, जहां लोगों को कोदरे और गेहूँ की बनी "बाड़ी" खिलाते हैं।

19. शिवरात्री :

शहरी क्षेत्रों में कुल्लू की शिवरात्रि देश के अन्य भागों की शिवरात्री से भिन्न नहीं है। कुल्लू में शिवरात्रि का मेला सरवरी में लगता है जब कि शेष सभी मेले (होली के मेले को छोड़ कर जो अखाड़े में लगता है) ढालपुर के मैदान में लगते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में शिवरात्रि भिन्न रूप से मनाई जाती है। औटर सिराज क्षेत्र में यह त्यौहार पंद्रह दिन तक चलता रहता है। मुख्य दिन को गलगल की पूजा की जाती है जो शिव का प्रतीक माना जाता है गलगल के फल लेकर उनकी माला बनाई जाती है। माला को घर के मुख्य कमरे के छत से फर्श तक लटकाया जाता है। फर्श पर चित्रकारी की जाती है। रात को विशेष रूप से इसकी पूजा होती है। बढ़िया भोजन बनाया जाता है जिसमें भट्रूरे और भल्ले प्रमुख हैं। दूसरे दिन से इन भट्रूरों-भल्लों को अपने-अपने रिश्तेदारों में बांटा जाता है।

विशेष उत्सव :

ऊपर लिखे साल भर के मेलों और त्यौहारों के अतिरिक्त कुल्लू में कुछ अन्य विशेष उत्सव मनाने की प्रथा है। विवाह शास्त्रीय नीति से भी मनाये जाते हैं और कुछ स्थानीय परम्परा से भी। दोनो नीतियों में अधिक अंतर नही है। जहां शास्त्रीय नीति के विवाह देश के अन्य भागों की तरह प्रचलित होते हैं, स्थानीय परम्परा के विवाहों में शास्त्रीय पद्धति के स्थान पर स्थानीय देवताओं की मर्यादाओं को अपनाया जाता है। यह केवल मंत्रादि पढ़ने का अन्तर है शेष कार्यवाही समान रूप से चलती है

घरपेशी :

नये बनाये घर में पहली बार जाने पर जो उत्सव कुल्लू के ग्रामीण क्षेत्रों में मनाया जाता है वह विवाह-उत्सव से किसी तरह कम महत्त्व का नहीं होता। घरपेशी संस्कृत शब्द "गृह प्रवेश" का बिगड़ा रूप है। जब नया घर छत लग कर पूर्णतया तैयार हो जाता है तो उसमें तब तक स्थाई रूप से प्रवेश नहीं किया जाता जब तक विशेष रुप से प्रतिष्ठा नहीं की जाती। देवते द्वारा निर्धारित तिथि के दिन घर का मालिक अपने सभी रिश्तेदारों को आमंत्रित करता हैं जिसे "तलाई" कहते है। घर का मालिक विवाह की तरह बढ़िया भोजन तैयार करता है। कई स्थानों पर घर की छत के ऊपर बकरा काटा जाता है और भोजन में उस बकरे का शिकार भी शामिल होता है। एकत्रित सभी रिश्तेदार और गाँव के सभी लोग गीत और नृत्य से घरपेशी के उत्सव का खूब आनन्द लेते है।

देव-राधाणा :

गांव के लोग कई बार किसी संकट निवारण के लिये अथवा विशेष इच्छाओं की पूर्ति के लिये अपने देवता से मनौती करते हैं कि यदि उनके संकट का निवारण हो जाये या उनकी विशेष इच्छा की पूर्ति हो जाये, तो वह अपने स्थानीय देवता को अपने घर बुलायेगा। मनौती पूरी होने पर देवते द्वारा ही तिथि निर्धारित की जाती है कि वह फलां दिन उसके घर आयेगा। वह व्यक्ति उस दिन विवाह-शादी की तरह भोजन आदि का विशेष प्रबन्ध करता है। अपने रिश्तेदारों और गांव बालों को बुलाता है। देवते को दो-चार दिन पहले ही एक पूर्व-निमन्त्रण भेजा जाता है। देवता के पुजारी, कारदार, कुठियाले और कार्यकर्ता उस दिन देवता को सजाते हैं और उसी दिन उस व्यक्ति के दूसरे निमन्त्रण पर प्रातः ही ग्राम देवता रथ में सज कर बाजे गाजे के साथ उस व्यक्ति के घर पहुंचता है। देवते का खूब स्वागत होता है देवते के साथ आये लोगों की आव-भगत होती है और सब उपस्थित लोगों को खाना खिलाया जाता है। शाम को देवता बाजे-गाजे के साथ ही पुनः अपने मन्दिर पहुंचता है।

देवता-मनाना :

कुल्लू के देवता मनुष्य की तरह राजी नाराज हो जाते हैं। कभी-कभी रूठ भी जाते हैं और वह रूठ कर किसी दूसरे देवते के यहां चले जाते हैं, जो उस देवते के ही रिश्तेदार होते हैं। तब इलाका में विशेष आफतें पड़ती हैं। यदि इलाका में कोई महामारी फैल जाए, या पशुओं का विशेष रोग फैल जाये, या भारी बाढ़ आ जाये, अथवा सूखा पड़ जाये तो समझो देवता नाराज हो गया है और रूठ कर चला गया है। तब देवता के "गूर" से विशेष रूप से अनुरोध किया जाता है कि वह बताये कि क्या सचमुच देवता रूठ कर चला गया है और यदि हां तो कहां। "गूर" के मुख में स्वयं देवता बोलता है। तब किसी निश्चित तिथि को गांव के लोग अपने

शरीर, मकान-घर, गली-मुहल्ले और सारे गांव की खूब सफाई करते हैं। इसे 'चोखा करना' कहते हैं। जब हर तरह से स्वच्छ वातावरण हो जाये तो देवते को पूरे साज-समान के साथ लेकर उस देवते के मन्दिर को प्रस्थान किया जाता है जहां वह रुठ कर गया है। उस गांव के लोग उन लोगों का स्वागत करते हैं वहां विशेष कार्यवाही पूरी की जाती है। देवता को मनाया जाता है और जब वह प्रसन्न हो जाये तो उसे लामण गीतों और हुलकी नृत्य के साथ अपने मंदिर लाया जाता है। इसे देव मनाना कहते हैं।

देव-मिलन :

कई बार एक देवता अपने "गूर" की वाणि से स्वयं इच्छा प्रकट करता है कि मैं अपने दादा, भाई या मित्र देवता या बहिन देवी से मिलना चाहता हूँ। तब भी ऊपर कथित देव-मनाना की तरह उत्सव मनाया जाता है।

यह कुल्लू के उत्सवों, त्यौहारों और पर्वों का सामान्य सा परिचय है। इन्हें इस छोटे से लेख में विस्तार देना सम्भव नहीं है। अन्यथा एक-एक त्यौहार, उत्सव और पर्व पूरे लेख का विषय है।

हि० प्र० मैडिकल कालेज
शिमला।

कुल्लू के जन-जीवन की झांकी

●विद्या चन्द ठाकुर

प्राकृतिक सौन्दर्य की रानी 'कुल्लू घाटी' भारतीय संस्कृति का शीर्ष स्थल हैं। यही पावन उपत्यका मनु, जमदग्नि, गौतम, वशिष्ट, पराशर, व्यास तथा भृगु जैसे अनेकों ऋषि-मुनियों की साधना-भूमि रही है। यहां के जन-जीवन में पुरातन संस्कृति के चिन्ह अधुनातन देखे जा सकते हैं। बीसवीं शताब्दी के भौतिक युग में जबकि प्रत्येक क्षेत्र का जन-जीवन प्रभावित हुआ है' कुल्लुवी जन जीवन का भी अपरिवर्तित रहना पूर्णतः अस्वाभाविक है। आधुनिक युग के प्रभाव से यह देवलोक भी अछूता नहीं रहा है। तथापि, इस देवलोक के लोकमानस द्वारा अपने पूर्वजों की परम्परागत अमूल्य निधि को न्यूनाधिक रूप में सुरक्षित रखा गया है।

कुल्लू के लोगों का जीवन अत्यन्त सादगी पूर्ण है। ये लोग प्रकृति से ही ईमानदार, स्वा-बलम्बी तथा कठोर परिश्रमी हैं। देश के अन्य भागों की तरह कुल्लू भी कृषि-प्रधान क्षेत्र है। पर्वतीय भूमि होने के कारण कृषि कार्य यहां काफी कठिन है। कृषि-भूमि इतनी उपजाऊ नहीं है कि सुगमता से अन्न का उत्पादन किया जा सके। खेतों में दिन रात खून-पसीना एक करके अन्न पैदा किया जाता है। कृषि के काम में स्त्रियां भी पुरूषों से पीछे नहीं रहती। बच्चे भी अपने सामर्थ्य के अनुसार खेतों में जाकर पूरा सहयोग देते हैं। इतनी मेहनत के पश्चात यहां की भूमि से मात्र पारिवारिक पोषण के लिए ही अन्न प्राप्त होता है। कुछ इने-गिने लोग जिनके पास कृषि-भूमि अधिक है, अतिरिक्त अन्न पैदा करते हैं। अतिरिक्त अन्न की खपत गांवों में ही हो जाती है। शहरों में लाकर अनाज कभी कमार ही बेचा जाता है। अब यहां के लोगों ने कृषि के साथ-साथ बागवानी की ओर भी ध्यान दिया है। सेबों के बागों ने इस क्षेत्र की काया पलट दी है। इससे यहां आर्थिक समृद्धता आई है और लोगों का जीवन-स्तर ऊंचा हुआ है।

बागवानी के क्षेत्र में विकास से पूर्व यहां के लोगों की आय के साधन भेड़, बकरियां तथा गाय, बैल आदि पशु थे। कुछ लोग भेड़-बकरियां पालने का व्यवसाय अब तक बनाए हुए हैं। ये लोग इनसे प्राप्त ऊन बेचकर पर्याप्त धन कमाते हैं। कुल्लुवी भाषा में भेड़-बकरियों को 'धौरए' कहा

जाता है। 'धौरण' संस्कृत के धन' शब्द का विकृत रूप है। भेड़-बकरियों से प्राप्त श्राय को दृष्टिगत रखते हुए इन्हें 'धौरण' कहना सर्वथा उचित है। गाय पालकर भी लोग 'घी' और गाय के बच्छी-बछड़े श्रा द बेचने से पर्याप्त आमदनी कमा लेते हैं। गाय-बैल पालने का काम आमतौर पर स्त्रियां ही करती हैं।

कृषि कार्य से निवृत होने पर पुरुष घरों में बुनने के काम में रूचि लेते है। बुनने के काम में कुल्लू का प्रत्येक मर्द सिद्धहस्त है। वे जहां अपनी आवश्यकता के लिए पट्टू आदि बुनता है, वहां वे आवश्यकता से अधिक तैयार किये गये पट्टू, पट्टी, दोहड़ू (कम्बल) को बेच कर आय भी कमा लेते हैं।

कुल्लू में अभी तक संयुक्त परिवार की परम्परा प्रचलित है। परिवार का वयोवृद्ध व्यक्ति परिवार पर अपना नियन्त्रण रखता है और परिवार के सभी सदस्य उसका अनुशासन मानते हैं। पिता के जीवन काल में भाईयों द्वारा परस्पर पृथक परिवार की घोषणा नहीं की जाती है। यदि बहुत गम्भीर पारिवारिक विवाद हो जाने पर परिवार-विभाजन हो ही गया तो इसे हेय समझा जाता है। पितृ-सम्पति के अधिकारी केवल पुत्र होते हैं, पुत्रियां नहीं। अब सरकार की ओर से पुत्री को भी पिता की सम्पति प्राप्त हो जाती है परन्तु पुत्रियां इस पर अपना अधिकार रखना उचित नहीं मानतीं हैं। वे पितृ-सम्पति को सहर्ष भाईयों के लिए छोड़ देती है। इससे भाई-बहन का परस्पर स्नेह-बन्धन अत्याधिक सुदृढ़ रहता है जो कि सम्पति पर अधिकार बनाए रखने की स्थिति में निश्चित रूपेण शिथिल हो जाता है। पत्नी को भी पति की सम्पति का अधिकार सरकार द्वारा प्रदत्त है वे भी प्रायः इस सम्पति पर अपना अधिकार काट कर बेटों को दे देती हैं। कुल्लुवी परिवार में अतिथि-सत्कार के अभूतपूर्व दर्शन सुलभ होते हैं। घर में अतिथि-आगमन आह्लादकारी वातावरण तैयार कर देता है। परिवार के सदस्यों में कोई अनबन हो, तो भी इस अवसर पर सभी विवादों को भुला कर सारा परिवार अतिथि सेवा में जुट जाता है। अतिथि की ऐसी सेवा-शुश्रुषा को देखकर निःसंकोच यह कहा जा सकता है कि ये लोग भारतीय मनीषियों द्वारा दिये उपदेश 'अतिथि देवो भव' का पूर्ण अनुपालन कर रहे हैं।

कुल्लू आर्थिक दृष्टि से काफी पिछड़ा क्षेत्र रहा है। यह आर्थिक अभाव यहां के सामान्य मकानों में स्पष्ट दीखता है। सभी पुराने मकान तीन मंजिले हैं। कहीं-कहीं चार मंजिले मकान भी हैं, जो बहुत ही कम हैं। प्रत्येक मंजिल में एक ही बड़ा कमरा होता है। नीचली मंजिल में पशु रखे जाते हैं, मध्य मंजिल में पूरा परिवार रहता है तथा ऊपरी मंज़िल में भण्डार (स्टाक) रहता है। इष्ट देवता की स्थापना भी प्रत्येक घर में ऊपरी मंजिल में ही की जाती है। चार मंजिलें मकानों में दूसरी मंजिल का कमरा भी भण्डार रूप में प्रयुक्त होता है। सेब के बगीचों ने यहां के अर्थाभाव को दूर करने में सक्रिय भूमिका अदा की है। लोगों के रहन-सहन में एक

एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया है। अतः अब यहां आधुनिकता के अनुरूप शान-शौकत वाले मकान बन रहे हैं।

कुल्लुवी समाज में बहुपत्नी प्रथा का प्रचुर प्रचलन था। यद्यपि बहुत पत्नियों का रखा जाना किसी पुरूष की बहादुरी का प्रतीक था तथापि, अनुभवों के आधार पर इस प्रथा की निन्दा भी की गई है। इस सन्दर्भ में एक लोकोक्ति प्रचलित है —

"बोहू ज़िमी हसला खांदी, बोहू जोई खसमा खांदी।"[4]

अर्थात् "काम की पहुँच से बाहर की अधिक जमीन केवल लगान (भू-राजस्व) खाने वाली होती है तथा बहुत पत्नियां भी पति के लिए दुखदायी ही रहती हैं।" अब हिन्दू कोड बिल पास होने के पश्चात् बहुपत्नी प्रथा यहां भी समाप्त हो चुकी है। किन्हीं आवश्यक परिस्थितियों में ही एक से अधिक पत्नी लाई जाती है। बहुपति प्रथा के संकेत यहां नहीं मिलते। कहते हैं कि बहुत पहले रूपी और सिराज में ऐसी प्रथा रही है, परन्तु अब इसका सर्वथा उन्मूलन हो चुका है।

कुल्लू घाटी में विवाह पहले माता-पिता द्वारा ही तय किये जाते थे। इसमें लड़की-लड़के को मां-बाप का निर्णय किसी भी परिस्थिति में स्वीकार करना पड़ता था। अभी लड़की-लड़के छोटे होते थे कि उनका विवाह निश्चित हो जाता था। विवाह निश्चित होने के पश्चात् लड़के वाले लड़की वाले के घर जाकर एक छोटा विवाह रचाते थे। इस अवसर पर गुड़ बांटा जाता था, अतः इस छोटे विवाह को 'गुड़ बौरनी' के नाम से जाना जाता है। जब लड़की-लड़के वयस्क आयु में पहुंच जाते थे तब इनका सम्पूर्ण विवाह शास्त्र-विधान या देव-विधान द्वारा सम्पन्न किया जाता था। आजकल कुल्लू में भी 'चट मंगनी, पट विवाह' की उक्ति चरितार्थ हो चली है। "गुड़-बौरनी" लगभग समाप्त ही हो चुकी है। इसके स्थान पर अब विवाह से पूर्व या तुरन्त बाद पति-पत्नी द्वारा एक दूसरे को वचन-पत्र (अष्टाम) लिखकर देने की प्रथा चल पड़ी है। प्रेम-विवाह भी यहां अज्ञात नहीं है। राजपूत लोग प्रायः मेलों और उत्सवों में से लड़की भगाकर ले जाते हैं। लड़की भगाने में लड़के के मित्र सम्बन्धी पूरा साथ देते हैं। यहां स्त्री को पहला पति छोड़कर दूसरा पति चुनने की समाज पूरी छूट देता है परन्तु ऐसी स्थिति में दूसरे पति द्वारा पूर्व पति को हरजाना देना पड़ता है। पति पत्नी के सम्बन्धों में दरार पड़ने पर तलाक भी दिया जाता है। विधवा स्त्री भी किसी को पति चुन सकती है, पर, विधवा-विवाह शास्त्र या देव विधि से नहीं होता।

कुल्लू के जन-समाज में सामुदायिक सहयोग की भावना बड़ी उच्च है। यदि किसी आदमी का बीमारी या कुछ अन्य कारणों से कोई काम अधूरा रह जाता है तो गांव के सभी लोग मिलकर उसकी सहायता करते हैं। वैसे भी यहां अलग-अलग दिनों में प्रत्येक परिवार

गांव के सभी अन्य परिवारों से सहयोग देने की अपील करता है। इस प्रकार से अपील करने पर हर परिवार से एक आदमी उस के काम में सहयोग देने जाता है। इस सामूहिक कार्य प्रथा को 'जुआर' से अभिहित किया जाता है।

ग्राम्य-जीवन में यहां एक परिवार का दूसरे परिवार से द्वन्द्व तो हो सकता है परन्तु, कोई व्यक्ति पूरे गांव के विरुद्ध कदम नहीं उठा सकता। यदि कोई ऐसा करता है तो सारा गांव उसे उग्गू (बायकॉट) कर देता है। उसके साथ प्रत्येक स्तर पर मिलना जुलना बन्द हो जाता है। यदि उस घर में कभी कोई मृत्यु घटना हो जाए, केवल मात्र उसी दशा में गांव के लोग मृतक के दाह संस्कार करने हेतु वहां जाते हैं। ऐसे लोग अपनी गलती मानकर दण्ड भरें तो उससे गांव वालों का समझौता हो जाता है।

कुल्लू में मक्की की रोटी लोगों का नित्याहार है। ऊंचे २ इलाकों में काठू और कोदरा भी प्रमुख आहार है। गेहूँ का अधिकतर प्रयोग गर्मियों के दो-तीन महीनों में होता है। इन दिनों गेहूँ के बने बटुहरू अधिक पसन्द किये जाते हैं। चावल का प्रयोग बहुत कम किया जाता है। परन्तु कुल्लू के उझी क्षेत्र (अपर कुल्लू) के लोग बंगाली लोगों की भांति भोजन में चावल का प्रयोग बहुत अधिक करते हैं। मक्की या गेहूं का भोजन इनके यहां यदा कदा ही बनता है। उझी को छोड़कर कुल्लू के लोग चावल का प्रयोग कम तो अवश्य करते हैं किन्तु इनके भोजन में चावल जाति के तीन अनाज और भी सम्मिलित हैं। वे हैं काऊंणी, चीणी और घांगड़ी। जहां अन्य स्थानों पर केवल चावल या धान का भात खाने को मिलता है, वहां यहां के लोग चावल, कांऊणी, चीणी और घांगड़ी—चार प्रकार का भात खाते हैं। भात के इन अनाजों के साथ दाल मिलाकर पकाएं तो खिचड़ी तैयार हो जाती है। खिचड़ी को घी के साथ खाया जाता है। घी-खिचड़ी का भोजन बड़ा स्वादिष्ट होता है। तभी तो लोक-गीतों में प्रेयसी, प्रियतम से कहती है चलो घर चल कर घी-खिचड़ी खाएं

चौली घौरा बै जाणा मेरै चिड़ुआ।
घौरा जाइआ की खाणा मेरी चिड़ियै॥
घीऊ खिचड़ु खाणा मेरै चिड़ुआ।

—मेरे पक्षी (प्रियतम) चलो घर चलते हैं।

— प्रिया ! घर चलकर क्या खाएंगे?

- प्रियतम ! घी-खिचड़ी खाएंगे।

दो अन्य भोजन कुल्लू में और बनते हैं, जिन्हें कि घी के साथ खाया जाता है। वे भोजन हैं सीड़ू और बाड़ी। आटे के पेड़े में माश आदि चटनी डालकर, विशेष बनावट देकर पेड़ों

के उबाले जाने पर सीड़ तैयार होते हैं। आटे को कड़ाही में घोल कर पकाया जाता है तो बाड़ी तैयार होती है।

भोजन के साथ यहां माश और राजमाश दाल का प्रयोग अधिक होता है। ज्यादातर सब्जी आलू, अरबी और सरसों के साग की बनती है। मक्की की रोटी और बट्ठ्रू के साथ लस्सी का प्रयोग भी बड़े चाव से किया जाता है।

यहां के लोगों के पेय पदार्थ हैं फम्बड़ा, सूर और चाकटी। मक्की तथा गेहूं का दलिया, चावल और सरयारा आदि अन्नों को उबाल कर फम्बड़ा बनता है। सरयारे का फम्बड़ा सब से मज़ेदार होता है। फम्बड़ा पीकर लोग अपने-आप को हल्का महसूस करते हैं। थकावट दूर करने में भी यह पेय बड़ा उपयोगी है। आज की भाषा में फम्बड़े को 'पहाड़ी चाय' का नाम भी दिया गया है। सूर और चाकटी नशीले पेय हैं। चाकटी की खोज अर्वाचीन है। यह चावल में 'फाफ' नाम की औषधि डालकर बनती हैं। 'सूर' कोदरा नाम के अन्न की बनती है, जिसमें कि 'डेली' (एक औषधि) डाली जाती है। सूर का प्रयोग पुराने समय से होता चला आया है। वैदिक काल में भी इस पेय का उल्लेख मिलता है। सूर पीने से झिझक दूर होती है, जिससे दिल खोल कर बातें की जा सकती हैं। इसका यह महत्त्व एक लोकोक्ति द्वारा स्पष्ट किया जाता हैं —

"घीऊ खाणा बौलै री तैईं, सूर पीणी गौलै री तैईं"

अर्थात् "घी बल के लिए खाया जाता है और सूर बातचीत के लिए पी जाती है।"

वर्तमान समय की होड़ में सर्वाधिक प्रभाव लोगों की वेश-भूषा पर पड़ा है। कुल्लुवी वेश-भूषा में भी समय अनुसार पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। फिर भी कुल्लू में दो ऐसे पहरावे हैं पट्टू और टोपी जो समय के थपेड़ों से पूरी तरह सुरक्षित रहकर, अपने डिजाइन में कुछ परिवर्तन करके विश्व ख्याति को प्राप्त हो रहे हैं। अन्य वेश-भूषा में कुल्लू के लोग समय के साथ चले हैं। तीन-दशक पूर्व तक यहां के लोग केवल ऊनी वस्त्र ही पहनते थे। पुरुष काला टोपा तंग सा ऊनी पाजामा, ऊनी ही कमीज तथा कोट के स्थान पर चोगा लगाते थे। स्त्रियां पट्टू, थिप्पू (स्कार्फ), कुर्ती और सल्वार जाति का वस्त्र 'पाहुचा' पहनती थी। थिप्पू का प्रचलन भी अधिक पुराना नहीं हैं। बहुत पहले के समय में स्त्रियां थिप्पू के स्थान पर 'गुघली टोपी' का प्रयोग करती थी। कुल्लू के लोक नर्तकों की एक विशिष्ट वेश–भूषा है। यहां के नर्तक सफेद चोला (चोगा), मनाल पक्षी की कलगी से सजा काला टोपा, चूड़ीदार पजामा पहन कर विभूषित होते हैं। नर्तकियां फूलदार काला पट्टू, थिप्पू और चूड़ीदार सल्वार से सुसज्जित

होती है। वेश-भूषा का वर्णन लोक-कवि मुक्तकण्ठ से करता है —

"चोला टोपा कलगी कुलु रा बाणा,
चौला आसा जाचड़ु लाणा हो।
थिप्पू पिडी-सूथण फुल्ला आला पौट्ट
चौला आसा नौचदै जाणा हो।"

—"चोला, टोपा और कलगी कुल्लू का पहरावा हैं, आएं! हम नाच नाचें।
— थिप्पू चूड़ीदार सल्वार और फूलदार पट्टू पहनकर, चलो! नाचनें चलें।"

बहुत पहले समय में कुल्लू की स्त्रियां और पुरूष दोनों अत्याधिक आभूषण प्रिय रहे हैं। आजकल पुरुषों के आभूषण तो लगभग समाप्त ही हैं, केवल नन्ती और मुरकी नाम के आभूषण किसी-किसी पुरुष के कानों में नजर आते हैं। स्त्रियां भी आभूषणों का पुराना मोह त्याग चुकी हैं। कई पुराने आभूषणों के तो अब दर्शन तक दुर्लभ हो गए हैं। आजकल जो आभूषण देखने को मिलते हैं, उनमें कर्णाभूषण के अन्तर्गत-कनबाले, गोखड़ु, बाली, नन्ती, मुरकी, खुण्डु और कांटे हैं। नाक में फुल्ली या तिल्ली पहनी जाती हैं। पुरानी-पुरानी स्त्रियां लौंग और बलाक भी लगाती हैं। विवाह के अवसर पर नाक में बालू पहना जाता है। हाथों में कोई २ स्त्रियां टौके, बन्द, कांगणू तथा मरीदड़ी पहनती हैं। आमतौर पर अब हाथ के आभूषण चूड़ियां बन गया है। टाँगों में भी पहले कांगणू (कंगन) पहने जाते थे। वहां पर अब झंझरा (नुपूर) छनछनाती हैं। कण्ठाभरणों में चन्द्राहार, तवीत, रूपए री माला, डेण्डू माला, ज़ौ माला, छाटो आदि प्रचलित थे। अब इनके स्थान पर जंजीर या पैन्डल का रिवाज हैं।

पहले यहां लड़कियां विवाह के समय वर-पक्ष से काफी सारे आभूषणों की मांग करती थीं। आज वे परिवर्तित परिस्थितियों को पहचान चुकी हैं। वे जानती है कि आज सोना-चांदी के भाव आकाश तक जा पहुंचे है। ऐसे समय में आभूषणों की मांग करना एक मूर्खता ही है। यह सब जानकर ही तो गोपाली नाम की लड़ली ने माता से कहा था कि माता आप मेरे वर से आभूषण के लिए दुराग्रह न करना। माता जी ! "मुझे कर्णाभूषण के रूप में गोखड़ू नहीं चाहिए। मेरा धन तो मेरा दिलवर है, गोपाली को तो दिलवर को छोड़कर कुछ नहीं चाहिए।" गोपाली का यह सामयिक अनुरोध लोकगीत में यह पंक्ति बन गया है —

"कौना बै गोखड़ु नीं लोड़ीं आमां,
गोपाली धन मेरे दिलै, दिलै मेरी गोपालिए।"

कुल्लुवी स्त्रियां शृंगारप्रियता में भी किसी से पीछे नहीं हैं। पुरानी स्त्रियां केशों को संवार कर बहुत बढ़िया चूड़ा (स्तूप) बनाती थीं। फूलों के प्रति यहां के लोगों का प्रेम अनन्य हैं। किसी मेले में देखे तो स्त्री-पुरूष फूलों से सुसज्जित मिलेंगे। कुल्लू की स्त्रियां प्राय: कान के ऊपर फूलों को सजाती हैं। माथे में बिन्दी लगाने का यह बड़ा शौक रखती हैं।

इनके शृंगार-सौन्दर्य से प्रभावित होकर ही तो किसी रसिक के हृदय से प्रस्फुटित हुआ यह लामरण वातवरण में गूंजा था

"सूने जूही रा झुमकू शोमला, मौथे पांघली बिन्दी ।
कोना पिछ़ला डोल्हरू भुरीयै, मूलै देली की सींदी ॥"

अर्थात् हे मेरी हृदेश्वरी ! "सोने जैसा तेरा जूही का झूमर और माथे की बिन्दी कितनी सुन्दर लग रही है। प्रिये असली सौन्दर्य तेरे कान के ऊपर लगे फूल में है। बता, तू इसे अपने प्रियतम को मोल से देगी या बिना मोल से ?"

अमोद-प्रमोद मानव जीवन की प्रमुख आवश्यकता है। कुल्लू में अमोद-प्रमोद के लिए कई मेलों और त्यौहारों का आयोजन होता है। यह मेले और त्यौहार ग्राम्य-जीवन में सरसता प्रदान करते हैं। शरद् ऋतु में यहां रात्रि को भरपूर चांदनी में निर्मल आकाश के नीचे शान्त वातावरण में युवतियां और युवक अपनी २ टोली में गांव के खलिहान में एकत्र हो जाते हैं। एक ओर लड़कों तथा दूसरी ओर लड़कियों की टोली खड़ी हो जाती है। फिर दोनों परस्पर गाने की प्रतियोगिता करते हैं। गाने के साथ २ नृत्य भी चलता है। इस प्रतियोगिता को 'लाहलड़ी' कहते हैं। 'लाहलड़ी' भी यहां के लोगों के मनोरंजन का प्रमुख साधन है।

कुल्लुवी लोक-जीवन में धर्म एक अविभाज्य तत्त्व है। यहां के लोक-मानस का देवी-देवताओं के प्रति अटूट विश्वास है। प्रत्येक कार्य का शुभारम्भ करने से पूर्व अपने कुल देवता की अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य माना जाता है। कुल-देवता किसी भी कोटि का हो, उसका स्थान अन्य देवों से सर्वोपरि होता है। आज-कल तो अनेकों कार्य पण्डितों द्वारा सम्पन्न होने लगे हैं परन्तु, कुछ समय पूर्व तक विवाहादि कार्य पण्डितों के बिना ही देवता कार्य-विधि के अनुसार सम्पन्न किए जाते थे। शास्त्र या पण्डित द्वारा निश्चित किये गये कार्यों में तो कार्यारम्भ से पूर्व गणपति पूजा होती है, किन्तु देव विधि से चलाए जा रहे कार्यों में प्रथमत: इष्टदेव की पूजा की जाती है। यहां लड़कों के नाम भी देवता द्वारा ही रखे जाते हैं। कार्य-सिद्धी के लिए देवी-देवताओं को कई प्रकार की मनौतियां की जाती हैं। देव-स्थानों पर बलि-प्रथा का रिवाज भी प्रचलित है। यहां के लोग जादू-टोना, मन्त्र-तन्त्र तथा शकुन-अपशकुन पर भी अपना विश्वास बनाए हुए हैं।

अतीत काल से वर्तमान काल तक कुल्लू के जन-जीवन में अनेकों पड़ाव आए, अनेकों परिवर्तन हुए परन्तु, यहां के लोगों ने बेईमानी के साथ किसी भी बिन्दु पर सहयोग नहीं किया। हर्षोल्लास से कष्ट साध्य जीवन व्यतीत करते हुए ये लोग प्रकृति मां के आंचल में सत्य और धर्म की आस्था पर अटल हैं।

जिला भाषा अधिकारी,
नाहन (हि० प्र०)

वाहरो सिरॉज़ कुल्लू का—
लोक-साहित्य और संस्कृति

●ठाकुर दत्त शर्मा

लोक साहित्य अपने रूप में ही एक विशिष्ट साहित्य होता है जिसके मूल हेतु लोक साहित्य उन अशिक्षित जन समाज की भाव भंगिमायों की अभिव्यक्ति का एक साधन है जो भाव जन-समाज के हृदयों में सागर के सदृश हिलोरें लेते हैं। लोक साहित्य में जीवन से लेकर मृत्यु तक ऐसा कोई भी अंश रिक्त नहीं होता है। लोक साहित्य अपने आप में एक आदर्श साहित्य होता है। लोक साहित्य से हमें इस बात का भास होता है कि जीवन यापन के प्रत्येक पहलू में जन-जीवन के कदम किस प्रकार बढ़ते हैं और अशिक्षित जन कितने ज्ञानवान हैं। इन जनों का सांस्कृतिक ज्ञान इतना विस्तृत होता है कि इनका यह ज्ञान जो लोक साहित्य के रूप में इनके ही मस्तिष्कों की उपज होती है चिन्तन और मनन के बल पर यह-ज्ञान वेदों में भरे सत् ज्ञान की कसौटी पर कहीं खरा उतरता है। जीवन के साथ घटने वाली प्रत्येक घटनाओं का भी सजीव चित्र लोक साहित्य में द्रष्टव्य होता है। वाहरी-सिराज कुल्लू का भी अपना ही लोक साहित्य है। साहित्यिक विधाओं की कसौटी पर यह साहित्य अत्यन्त ही खरा उतरता है। एक नहीं अनेकों उदाहरण द्रष्टव्य हैं। यथा :

नारणे[1] औ कैणी[2] कर्म रेखा वणाई
जन्म ता हुओ मां वापे घरा दी
पर घर गृहणी[3] हो रतैं[4] ही वणाई
जै आसा अ सच्ची गल तैवै वणु आपणे
पति देवे री दासी
हामै आ सीता-सावित्रीये देशा री वासी।

---

१ भगवान २ किस प्रकार की ३ पत्नी ४ और जगह

उपरोक्त छंद में एक नवयुवती के मन के विचार हैं, नवयुवती कहती है कि यह कर्म की रेखा प्रभु ने कैसी निर्मित की है कि जन्म तो माता-पिता के घर में होता है किन्तु गृहणी तो अजनबी घर में बनना पड़ता है। अगर हे देव यह अटल सत्य है तो मैं भी अपने पति देव की दासी बनूंगी, क्योंकि मैं सीता और सावित्री के ही देश की वासिनी हूं।

लोक साहित्य में नागरिक एवं ग्रामीण दोनों संस्कृतियां विद्यमान हैं। लोक साहित्य रत्नाकर होता है जिसके गर्भ में रत्नों की भरमार है। वास्तव में लोक साहित्य समाज की अमूल्य एवं अनुपम निधि है। इसमें हमारा भूत निहित है वर्तमान का प्रतिबिम्ब है और भविष्य के प्रति कर्म प्रकाश भी दृष्टिगत होता है। कुल्लुई क्षेत्र जैसे पिछड़े इलाके के लिए इतिहास की बात के प्रश्नोत्तर हेतु लोक साहित्य नीव है और चूना गारा, ईंट इत्यादि इतिहास भवन सामग्री सभी कुछ है। लोक साहित्य में समाज की एक एक अवस्था, वैयक्तिक सुख, दुख हर्ष विषाद और सामूहिक जय पराजय अंकित है।

वाहरी सिराज में ग्राम दलाश से कुछ दूर घुहाण नामक ग्राम के अति समीप एक 'ओवरी' नाम का बहुत बड़ा ढंक है। इस ढंक का डरावना रूप अभी भी बना हुआ है, जबकि लूहरी दलाश रोड़ के निकल जाने के कारण यह कुछ थोड़ा सा कट गया है। इसी ढंक में एक दुल्हा और एक मृत शरीर की फोटो चट्टान में चित्रित है। कहते हैं कि मृत शरीर को उठाने वाले ने कहा कि इस तंग मार्ग से मुझे पहले निकलने दो और दुल्हे ने कहा कि पहले मुझे निकलने दो कुछ होड़ सी लगी रही इसी होड़ की मुद्रा में चट्टान पर चित्र भी चित्रित है। शायद यह होड़ कुछ तत्व की बात थी किन्तु जनश्रुति के अनुसार यही ज्ञात है कि इस संसारिक यात्रा का यह भी एक प्रश्न है। इसी ओवरी ढंक से एक किलोमीटर सतलुज नदी की ओर एक खेखसु माता के मन्दिर को जाती हुई पानी की कूल है किन्तु इस मिट्टी में खोदी गई पानी की नाली- अर्थात् कूल में अब पानी नहीं। किन्तु यह कूल अभी भी जली हुई रस्सी के सदृश बनी हुई है अर्थात् कूल का धूंधला सा रूप अभी भी विद्यमान है। कहते हैं कि माता खेखसु के मन्दिर के पास वाली भूमि पहले नहरी भूमि थीं जो आज बंजर भूमि है। इस नहरी भूमि में जाने वाली पानी-कूल को ग्रामीण बारी-बारी अपने खेतों में डालते थे। एक दिन एक बुढ़िया की बारी थी किन्तु गांव वालों ने उसके साथ झगड़ा कर दिया। वह बुढ़िया पानी की कूल के उस किनारे पर गई जहां से इस पानी की कूल का आदि किनारा था। यह किनारा ओवरी के ढंक के ठीक नीचे है। उसने वहां अपनी सत्यता का विचार किया। उस बुढ़िया ने विचार किया कि यदि "मेरे साथ गांव वालों ने अन्याय किया है। तो हे प्रभु! इस कूल का पानी सदा सदा के लिए समाप्त हो जाये।" जनश्रुति के अनुसार यह बात बहुत प्रसिद्ध है कि आज तक यह पानी की कूल सूखी पड़ी है। बार-बार प्रयत्न करने पर भी उसमें पानी नहीं जाता। जली रस्सी के सम उस कूल का टेढ़ापन कायम है। कहते हैं क्षोभके कारण उस बुढ़िया ने भी वहीं अपने प्राण त्याग दिये। यह उस जन समाज में सच्चाई का एक

अद्भुत चमत्कार था। पाप-पुण्य-अच्छाई भलाई का भी इन छोटी-२ सत्य कथाओं में सच्चा समन्वय है। बाहरी सराज कुल्लू के लोक साहित्य में अनेकों अनुभव प्रसूत सूक्तियां हैं। लोकोक्तियों का भण्डार तो है ही, लोक गीत में भी सारगर्भित वाक्यों का अभाव नहीं है। लामण साहित्य का एक पद लीजिए :

किलैं[1] उछड़ा, किलैं मौजैं खांदो,
कुछ धैड़े[2] बाद धर्म राजैं सभी लांणु धांदो[3]।

भाव यह है कि सिद्धान्त से बाहर मन-मर्जी की मौज अत्यन्त हानिकारक होती है ऐसी मौज पाप का कारण है। यह पद सचेत करता है कि एक दिन तो धर्मराज के निमंत्रण पर प्राणों का त्याग ही होगा अन्तर केवल इतना है कि आज प्राण नहीं त्यागे तो कल ही सही कल नहीं तो कुछ दिन बाद किन्तु यह बड़ा ही अटल सत्य है कि अमर इस संसार में कोई भी नहीं है।

लोक गीत का यह पद कितनी ही स्पष्टता के साथ सचेत करता है। यदि कहा जाये कि बाहरी सिराज कुल्लू की संस्कृति के एक मात्र दर्शन यहाँ के लोक साहित्य में होते हैं तो कोई अत्युक्ति न होगी। यहां के लोगों की धार्मिक मान्यतायें रीति-रिवाज, आचार, विचार सभी कुछ लोक साहित्य के अन्दर सुरक्षित हैं। अनेकों ऐसे उदाहरण देखने योग्य हैं। यथा :

	हिन्दी-अर्थ
मशीरै नैं रांची शांकरा	हे शंकर! मार्गशीर्ष में विवाह न करें।
मशीरै पड़ा पायो---	मार्गशीर्ष में सर्दी होती है।
पौशैं नैं रांची--	पौष में न रचाना--
पोशै हवा शैई लाड़ो--	पौष में हवा बहुत ठण्डी होती है।
माघैं नैं रांची शांकरा	- - -
माघैं करिये स्नाना	माघ मास में स्नान करते हैं
फागुणै नैं रांचीं शांकरा	- - -
फागुणे खेली फाग--	फागुन में होली खेलते हैं
चैत्र नै रांची शांकरा	
चैत्र फूलिया बणा सो	बणास का फूल चैत में खिलता है।
वशैह नैं रांची शांकरा	
वशैह फूलिया जुई---	वशैह में जुई का फूल खिलता है।
जेठै नैं रांची शांकरा-	

१. क्यों २. दिन ३. निमन्त्रण।

जेठं फूलिया कुई- शाडँ नैं रांची शांकरा-	जेठ (ग्रीष्म) में कुई का फूल खिलता है।
शांडँ तपी लाड़ो होये- शौणँ नैं रांची शांकरा	आषाढ़ मास में दुल्हा तपी होता है।
शौणँ वर्षादें मेऊ भद्रै नैं रांची शांकरा-	सावन में पानी बरसता है।
भद्रै मड़ी अमावसां होये- शौजैं नैं रांची शांकरा-	भादों में काली रात्री होती है।
शौजैं फूलिया पकाहा-	आशोज्र में कपास फूलती है।
काति रांचे शांकरा-	कार्तिक मास में ही दिन निकलता है।
काति करिये विवाह्	कार्तिक मास ही विवाह के लिए उपयुक्त है।

उपरोक्त काव्य रचना में दुल्हा को शंकर का रूप प्रदान किया है। काव्य रचना आद्यान्त भावों से ओत प्रोत है। विवाह के लिए शुभ दिन निकाला जाता है। किन्तु हर मास विशेष विवाह के शुभ दिन के लिए ठीक नहीं होता। क्योंकि अच्छे और बुरे की दृष्टि में प्रत्येक मास विशेष का अपना ही महत्व-होता है। अतः इस काव्य रचना के अनुसार कार्तिक मास विवाह के लिए शुभ माना है।

हमारी संस्कृति का जैसा स्वाभाविक सच्चा तथा सजीव चित्रण लोक साहित्य में दृष्टिगत होता है वैसा अन्यत्र नहीं। वास्तव में लोक-साहित्य में ही समूचा जन-जीवन चित्रित है। चाहे, यहां के धर्म को ले अथवा समाज संघटन को सभी बातों की स्पष्ट व्याख्या लोक साहित्य में ही सुलभ है। एक और उदाहरण अति मनोरंजक एवं दर्शनीय है।

कहो पतियो! सुणो सखियो
दुल्है देखदै जाणो[1]
दुल्है जै देखदै चाला रे सखियो
अन्ता[2] किन्हीयैं[3] नै पाईया
सज्जना. सुहेवली[4] सब मग्ना
दुल्हा दिगम्बरा[5] आओ
सिरै जटा धारी . . .
जटा जै धारणँ सिसां चमकैं
मुकटै गंगा वहाऊ या
त्रय[7] शौ तीसै कुई देवा जुलैं आयैं

१ देखने जाना २ भेद ३ किसी ने ४ सखी ५ नग्न ६ सिर पर चमक ७ तीन सौ

शम्भु ज्योति स्वरूप धारिया
नीमा[1] जै धर्मा कीछ कोई नै जीरादै
स्त्रवरा[2] मुद्रा लगाया
फेरी नाद[3] बजाई यो
ईंट्टा चौंर ढलाओ रे शम्भू
नारी मांग[4] गाईया।

इस लोक गीत में पर्वतराज की पुत्री-पार्वती से विवाह करने जब शिव अपने अनोखे जोगी के वेश में जाते हैं तो दृष्य बड़ा ही अद्वितीय है। इस अद्वितीय वेश का वर्णन एवं तेजस्वी स्वरूप का वर्णन लोक गीत में आद्यान्त हुआ है।

लोक गीत भी लोक साहित्य की कड़ियों को जोड़ने के लिए अपने अनेक सूत्र रखता है, यह हम पहले ही देख चुके हैं। लोक कथाओं में ऐसी प्रचुर सामग्री है जिसके आधार पर कुल्लुई वाहरी सिराज प्रदेश की अनेक भूली बिसरी यादों को जोड़ सकती है। समाज के प्रायः सभी पहलुओं का वर्णन और इन विशेष बातों का चित्रण जो जीवन के मूल तन्तु हैं लोक साहित्य में प्राप्त है। सत्य ही लोक साहित्य संस्कृति का एक सजीव चित्र है।

जिस प्रकार वेद को ईश्वर का ज्ञानमय तप कहा है उसी प्रकार लोक साहित्य भी अशिक्षित-समाज का ज्ञानमय तप होता है। सारी सृष्टि जो ज्ञानमय है, ज्ञान और विज्ञान में विभक्त है यह सब भगवान वेद का ही स्वरूप है। वैदिक ऋषियों का भी गौण उद्देश्य उस सत्य स्वरूप परमात्मा की बहुमुखी प्रतिभा की व्याख्या करना ही था। ऋषियों ने समाधिस्थ होकर ही वेदों मे समाविष्ट विशाल ज्ञान को प्रत्यक्ष किया। लोक साहित्य की भूमि का भी जन-समाज में ज्ञान को प्रत्यक्ष करना दृष्टिगत हुआ है। लोक साहित्य में भी अध्यात्म विद्या का जो ज्ञान कोष है उस ज्ञान की छाप वैदिक ऋषियों की ही तपस्या है। आज भी उनके ज्ञान की स्वर लहरियां दिग्मडल में गूंज रही हैं। यह गूंज हमारे स्नातन धर्म की ही एक आवाज है जिसने भारतीय मानव विशेष को ही नहीं अपितु समस्त संसार के बुद्धिजीवी प्राणी को सचेत किया है। अतः सनातन धर्म किसी काल विशेष या देश विशेष की सम्पति नहीं है । वह समस्त मानव जाति की जन्म सिद्ध सम्पति है। सनातन धर्म के पांच ईष्टदेव माने गये हैं। गणेश, विष्णु (राम-कृष्ण) दुर्गा, सूर्य और हनुमान। किसी विशेष अध्यात्म प्रभाव से यह अर्चनीय ईष्टदेव समाज में पूजे जाते हैं। बाहरी सिराज कुल्लू में माईया (दुर्गा) गणपति (गणेश) हडुमान (हनुमान) नरायणा (विष्णु) सूरज के रूपों में लोग सनातन धर्म प्रिय हैं। अपनी इस धर्म प्रियता से ही बाहरी सिराज कुल्लू में भगवान कृष्ण की

१ धर्म, कर्म २ कान ३ बाज इत्यादि ४ मंगल गीत

अनेक रूपों में पूजा करते हैं। नारी समाज के भगवान कृष्ण उनके कंत हैं, प्रियतम हैं और नारियां स्वय ब्रज वनितायें हैं। नारियां यह गीत गाती हुई दृष्टिगत होती हैं।

उधो माधो हरि मिलांगे...

पुरूषो के मुरारी, बनवारी एवं मुरली मनोहर भगवान कृष्ण सब के दु:खो को दूर करो। जन समाज की यह भक्ति ही जगत् पिता प्रभु को धरा पर अवतार लेने के लिए प्रेरित करती है। भगवान जगत पिता होकर भी भक्तों की ईच्छा पूर्ति के लिए पुत्र बन कर ही आनन्द पाते है। भगवान का कहना है कि मुझे जो "जैसा भजता है, उसे मैं वैसे ही प्राप्त होता हूं और भजता हूं।"

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।" भक्त की भावना के वशीभूत हो भगवान न जाने किसकिस गोदी में मोद नहीं करते। इस प्रकार विश्वास और इस विश्वास से विश्वस्त होना यह मानव मन का स्वभाव है। प्रकृति के सिद्धान्त अटल हैं प्रत्येक क्रियाकलाप शान्त भाव और एकांत भाव से सम्पन्न होते रहते हैं। प्रकृति के इन क्रियाकलापों के प्रति तथा उस अज्ञात शक्ति के प्रति विश्वस्त होना ही पड़ता है। लेकिन महत्त्व तो इस बात का होता है कि इसके सारतत्व को और गहराई को अधिक समझ लेना चाहिए। लोक साहित्य भी मानव मन की इस जिज्ञासा का हल करता है। लोक साहित्य अनेक ऐतिहासिक एवं पौराणिक गाथाओं का भण्डार है। बाहरी सिराज कुल्लू का लोक साहित्य भी एक अनुपम रत्नाकर है उस रत्नाकर से जो जितने रत्न प्राप्त कर सकता है इसके पीछे हर प्रवुद्ध पाठक गणों का, अन्वेषकों का, प्रयास निहित है। बाहरी सिराज कुल्लू का लोक साहित्य इस हिम भूमि के साहित्य और जीवन की एक कथा है। इस साहित्य में प्रदेश की वाणी मुखरित हुई है और भावों की अभिव्यक्ति हुई है।

लोक-साहित्य हर दृष्टि की पहुंच तक शोध का विषय है। यह भी सत्य है कि हर दृष्टि की पहुँच रोशनी तक है फिर सामिप्य का निरीक्षण अति स्पष्ट है। आज भी आवश्यकता इस बात की है कि हम लोक साहित्य का निरीक्षण अति सामीप्य से करें। बाहरी सिराज कुल्लू में कुछ जनपदों का नामकरण भी बड़े महत्त्व का विषय है। यथा निरमण्ड। कहते हैं परशुराम जी ने किसी विशेष अपराध के मूल हेतु अपनी पूज्यनीय जननी का शीश काट दिया था और मातृहत्या का अपराध अपने सिर पर ले इस स्थान को निमुण्ड (निरमंड) के नाम से भी प्रसिद्ध कर दिया। पिता से ही आज्ञा पालन की प्रसन्नता में मां के लिए भी अमर होने का बरदान मांगा। अनेक ऐसी सांस्कृतिक एवं वैदिक धर्म से ओत प्रोत बातें लोक-साहित्य में दर्शनीय हैं। बाहरी सिराज कुल्लू में विवाह से कुछ समय पूर्व दुल्हा और दुल्हन को हल्दी से रंग दिया जाता है। उस समय नारियां एक भावों से ओत प्रोत गीत गाती हैं। गीत के भाव देखने योग्य हैं।

बोटाणां संजोया ... ...
दादु-दादीयै फनैंऊई[1] आग्रो

---

१ पहरावा।

वोटाणां ... ...
किन्हीयैं फनैंऊई आओ
वोटाणां ... ...
बाबुय माईयैं संजोईया[1]
वोटाणा ... ...
किन्हीयैं फनैंऊई आओ
वोटाणां ... ...
चाचुयैं चाचीयैं फनैंऊई आओ
वोटाणां ... ...
किन्हीयैं फनैंऊई आओ
मामु-मामीयैं फनैंऊई आओ
बोटाणां ... ...
किन्हीयैं फनैंऊई आओ
भाभीयैं वीरणा[2] संजोईया
वोटाणा ... ...

भगवान शिव जी ने आज्ञा उल्लंघन करने पर "सती" निज भार्या का त्याग कर दिया था फिर अपने अगले जन्म में हिमालय पर्वत की पुत्री के रूप में पार्वती नामकरण रूप में सती ने जन्म लिया। सती की परीक्षा लेने हेतु भगवान शिव एक भस्म-साधु के वेश में हिमालय के घर आते हैं। बाहरी सिराज़ कुल्लू में उनके इस वेश में आने पर यह गीत नारियां गाती हैं। पहले शिव जी की सास उनके रूप को निहार कर कहती है फिर शिव जी उत्तर में कहते हैं। दर्शनीय है।

सास :

पारा ओरूआओ
ताता राऊड़ो जनेत[3]
ऐऊ भस्मा[4] पोकी लै बेटी नैं देऊ

वर :

डैंरो[5] डनेलड़ी मुंवी नैं विआयु

भूमिका :—

करे-करे ईश्वरा आपणो रुप-

---

१ सजाया २ भाई ३ जोगी ४. साधु ५ डंकणू

सिर लाग्रो सरगै[1]
पैर लाग्रो पैईयै ताडै[2]
सास : करे-करे ईश्वरा ग्रापणो रूप
तुलै देऊ ग्रारगा[3]
तुलै वशैंदरो धूप[4]
तू नैं बोली डैण-
मुं नैं बोलू राऊड़ा-
करे करे ईश्वरा ग्रापणो रुप

शिवजी की सास को ग्रपनी गलती का एहसास होता है ग्रौर शिवजी को मनाते हुए सास प्रायश्चित करती है। यह भावना भी उपरोक्त लोक गीत में ग्राद्यान्त समाहित है। जब कन्या के घर पर वर ग्राता है तो कन्या के कुल का पुरोहित कन्या को वर का सुस्वागत करने के लिए प्रेरित करता है।

कुल पुरोहित : –

बाहरी ता निकड़े-
बाड़ी धीये कनिया[5] -
बाहरी ग्राग्रो—
सुन्दरा स्वामीया...

वधू :

मैं किहा निकड़ू कुलजा[6] पुरोहिता
मैं हौंदी दादुये प्यारी......
मैं...................
मैं हौंदी[7] दादुये प्यारी......
मैं...................
मैं हौंदी भाभी वीरणे प्यारी...

कन्या कुल पुरोहित को भाव-विभोर होकर कहती है कि जिस को मुझे प्रिया बनना है उस व्यक्ति विशेष से पहले मैं माता-पिता, दादा-दादी एवं भाई-भाभी की भी प्रिय हूँ ग्रर्थात् सात्विक स्नेह रूप में कन्या ने ग्रपने परिवार के सब सदस्यों के प्रति प्रेम जताया है। मायका किस कन्या को प्रिय नहीं। पति के घर के बाद कन्या के लिए मायका ही होता है

१. ग्राकाश २. पैताल ३. पूजा ४. सुगंधित धूप ५. कन्या ६. कुल पुरोहित ७. हुई।

अतः यह बात केवल वाहरी सिराज़ कुल्लू की ही नहीं अपितु समस्त संसार के समाज की बात है जो वाहरी सिराज़ के लोक गीतों में दर्शनीय है। उपरोक्त गीत इसी भावना विशेष का प्रतीक है।

जब कन्या वरे के साथ सात वचनों की शपथ खाती है और फेरे लगाती है तब वाहरी सिराज कुल्लू की नारियां प्रत्येक फेरे के साथ मंगल गीत गाती हैं। इस मंगल गीत में नारियां वर को भगवान कृष्ण तथा वधू को गोपी (राधा) कह कर सम्बोधित करती हैं। गीत :

लाऊई[1] दीनी पहल की –
नारी मांगुड़ गाईया,
गोपी गोकुल काहवाड़ो,
कृष्ण विहाऊणँ[2] आओ,
दीनी, दुजी नारी मांगडु गाईया

इस प्रकार सातों फेरे सम्पन्न होते हैं।

वैदिक साहित्य जो हजारों आवरणों में अदृश्य रहता है लेकिन लोक साहित्य ने इस आवरण को नग्न कर दिया है। वैदिक साहित्य मे अंकित है कि कन्यायें मन चाहे पति को प्राप्त करने के लिए तपस्या करती हैं। पार्वती ने भी शिवजी को प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या की थी। लोक गीत मे यह तपस्या भाव भी समाहित है।

नदीये किनारे
वाड़ुयो[3] लिङ्ग वणाऊओ
शिव शंकरा उपजाऊओ
आगा जै आगा गौऊरी वेटी
पाछा हांडा[4] शिव शंकरा
तूये स्वामी आगड़[5] चाला

भाव यह है कि जब कठिन तपस्या करके पार्वती जी ने शिव को प्राप्त कर लिया तो सात वचनों को निभाने के रूप में फेरे लगाते आगे-आगे चलती है तो उन्हें इस बात का एहसास होता है कि शिव जी उनके स्वामी हैं अतः इन्हें पीठ दिखाना उचित नहीं है। अतः वह शिवजी से आगे चलने के लिए विनती करती हैं। वाहरी सिराज़ कुल्लू में एक मुहावरा भी प्रचलित है कि "कनो पाणी जेठी वात" अर्थात् पानी तो छोटे को पहले पीने देना चाहिए और मार्ग में बड़े के पावों के निशानों पर चलना चाहिए, बड़ों के आगे चलते हुए पीठ दिखाना पाप होता है। यही बात विशेष मुहावरे एवं लोक गीत में देखने योग्य है।

---

१. फेरे २. विवाह करने ३. नाक में लगाया जाने वाला गहना, ४. चलता है, ५. आगे-२।

इस प्रकार यह कितने चिन्तन का विषय है कि लोक साहित्य हमारे पूर्वजों, ऋषियों एवं मुनियों की एक थाती है। बाहरी सिराज कुल्लू का लोक साहित्य सत्य ही एक अमूल्य निधि है। आध्यात्मिक परम्पराओं से आबद्ध होकर जन साधारण का जीवन कितना पुनीत है यह श्रेष्ठ भाव लोक साहित्य में द्रष्टव्य हैं। जिस प्रकार कवि किसी दिव्य पुरूष की आरती उतारने के लिए तुलिका की सहायता से भाषा का मंदिर निर्मित करता है जिसकी भीत्ति पृथ्वी के गहन अन्तर्देश में रहती है तथा उसका शिखर मेघों को भेद कर आकाश में उठता है तभी कवि उस दिव्य पुरूष की आरती उतारने में समर्थ होता है उसी प्रकार कवि या लेखक का यह भी शाश्वत धर्म होता है कि वह लोक साहित्य के प्रति भी अपना धर्म निभाये ताकि लोक साहित्य किसी देश या प्रदेश में एक प्रतिमा के सदृश प्रतिष्ठित किया जा सके ताकि उस लोक साहित्य रूपी देव प्रतिमा के समक्ष नाना दिग्देशों से आकर लोग उसे प्रणाम करें। तभी लोक साहित्य की शिक्षा निधि जन मानस में प्रभावित हो सकेगी और संस्कृति के सत्य दर्शन भी हो सकें।

भाषा शिक्षक
श्री सनातन धर्म उच्च विद्यालय
शिमला १७१००१ (हि० प्र०)

कुल्लू के संस्कार

●नरेन्द्र शर्मा

संस्कृति और ज्ञान, भौगोलिक रूप और जातीय सीमा में बंधी रहने वाली वस्तुएं नहीं हैं। उनका विकास जीवन के भौतिक रूप और क्रम से होता है। किसी विकासशील समाज की संस्कृति सदा एक सी नहीं रहती। सजीव समाज की संस्कृति न ही प्रभावशाली, न ही समान होती है। जैसे नदियों में प्रतिक्षण नया जल बहता रहता है परन्तु उससे नदी का नाम और अस्तित्व नहीं बदलता।

ठीक इसी प्रकार सृष्टि में कई विचार धाराएं आई और संस्कारों का रूप बनता बिगड़ता गया परन्तु इनकी महानता वैसी की वैसी बनी है।

इसी प्रकार कुल्लू वादी के संस्कारों में नये विचार, नई कुरितियां आई परन्तु कुल्लू के अपने संस्कार जो यहां के जनजीवन की धरोहर है। यहां के संस्कारों पर किसी बाहरी प्रभाव या किसी नई घटना का प्रभाव कम ही है। जो कुछ पड़ा भी है, उससे यहां के संस्कारों में समृद्धि ही हुई। सृष्टि में हर मजहब जाति चाहे कहीं की भी हो उस पर संस्कारों का कितना प्रभाव होता है, यह तो दिनचर्या के छोटे मोटे झगड़ो से ही ज्ञात हो जाता है। ठीक इसी प्रकार कुल्लू के जन-जीवन की दिनचर्या में है। जन्म से लेकर मृत्यु तक संस्कारों का स्थान ऊपर रहा है। संस्कृति जिसकी नींव संस्कार ही है यहां के जन-जीवन में देखने को मिलती है। जिस जाति समाज के संस्कार जितने स्वच्छ और समृद्ध हैं उस देश की संस्कृति उतनी ही उज्जवल और समृद्ध है ऐसा विश्वास है। मैं संस्कृति की गहनता में न जाता हुआ अपने विषय की तरफ आता हूं।

हिन्दू संस्कृति के १६ (सोलह) संस्कारों में से कुल्लू के जन-जीवन पर पांच संस्कारो का मुख्यता बहुत महत्त्व और प्रभाव है।

१. बच्चे का जन्म
२. चूड़ा कर्ण संस्कार

३. उपनयन संस्कार

४. विवाह संस्कार

५. मृत्यु संस्कार

कुल्लू के जन-जीवन पर आज का नहीं अपितु कई वर्षों पूर्व से सबसे बढ़कर कुल्लू के संस्कारों का प्रभाव है। धार्मिक विश्वास यहां के हर वासी चाहे वह किसी भी जाति का हो अपने कुल और ग्राम देवता पर अगाध श्रद्धा रखते हैं। यही कारण है कि नवीनतम समाज के पाठकों व लेखको ने यहां की जाति के लोगों का देवी देवताओं पर पूर्ण आस्था रखने के कारण कुल्लू की धरती को 'देव-भूमि' कह कर पुकारा है। पौराणिक कथाओं व किताबों में भी यह बात है कि कुल्लू की ओर जब मण्डी से चलते हैं तो एक खास जगह से ऊपर जो आबादी वस्ती है सर्व धर्मों से परिपूर्ण है और जो यात्री इस बादि में पहुंचता है उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। यह किवदंती अभी भी कुल्लू में है। यही कारण है कि देवताओं में अगाध श्रद्धा के कारण अपने पौराणिक संस्कारों में परिवर्तन नहीं लाना चाहते। यही कारण है यहां की संस्कृति की उज्जवलता और बढ़ गई है। अब कहानी का रुप न लेता हुआ, संस्कारों में जो मुख्यतः यहां प्रधान है के बारे में थोड़े-२ शब्दों में बताता हूं। जिसके अध्ययन से आप स्वयं समझ सकते हैं।

1. बच्चे का जन्म संस्कार :

वैसे तो मानव सृष्टि पर जो भी जन्म लेता है। जहां बच्चे के संस्कारों की अपनी-२ महत्ता है। जो काफी ज्यादा मेल भी खाते हैं। परन्तु कुल्लू में देवताओं पर अगाध श्रद्धा होने के कारण इस संस्कार में कुछ भिन्नता है। जब मां बच्चे को जन्म देती है उसी समय मां और बच्चे को अलग किया जाता है। यह सब अपने कुल या ग्राम देवता के प्रकोप के डर से पूर्ण किया जाता है। कुल्लू में जिस घर में बच्चा होता है उस गोत्र के और साथ के सम्बन्धी कोई भी किसी से छुता ही नहीं और न ही देवता के स्थान मन्दिर में जाता है। जब बच्चा दो-चार दिन का होता है। तब घर की शुद्धि की जाती है। जिसे स्थानीय भाषा में "कुण्णी न उठणा" बोला जाता है। उस दिन घर की पूर्णरूप से शुद्धि की जाती है, सारे मकान की लिपाई-पोताई कर ली जाती है। साथ ही उस गोत्र के सभी परिवार अपने अपने घरों की शुद्धि करते हैं बाद में गाय के गोंत्र से सारे घर में छिड़काव किया जाता है। जिस घर में शिशु जन्म लेता है उस गृह में हवन पाठ करवाया जाता है। फिर (११) ग्यारह दिन उपरान्त दूसरी बार घर की सफाई और शुद्धि की जाती है। शुद्धता के लिए हवन पाठ दूसरी बार फिर किया जाता है। उसी दिन बच्चे के नामकरण की रस्म भी पूर्ण की जाती है। पुरोहित बच्चे का जन्म लग्न समय आदि देखकर नाम रखता है। उसी दिन विधिपूर्वक बच्चे को धूप भी दिखाई

जाती है जिसे स्थानीय भाषा में "धुप रिहारणा" कहते हैं। यदि घर में बच्चे का जन्म हुआ हो तो इस दिन काफी बड़ा उत्सव मनाया जाता है। आस-पड़ोस और दूर दराज के रिश्तेदार सभी को बुलाया जाता है। यह सब लड़की के जन्म पर नही होता। परन्तु अब ऐसा कम हो गया है लड़की के जन्म दिवस पर भी यह मनाया जाने लगा है। जब तक बच्चा पांच मास का न हो जाता उसे अन्न नहीं दिया जाता। अन्न भी बच्चे को विधिपूर्वक दिया जाता है जिसे स्थानीय भाषा में "लुगड़-देरणा" कहते हैं। इस दिन परिवार के सभी सदस्य इकट्ठे खाना खाते हैं और पुरोहित के हाथों विधिपूर्वक बच्चे को अन्नपान करवाया जाता है।

2. चुड़ाकर्ण संस्कार :

यदि लड़के का जन्म हो तो उसके बाल निकाले जाते हैं जिसे स्थानीय भाषा में "जौट्ट खोलरणा" कहते हैं। यह बच्चे के जन्म होने के उपरान्त एक साल, तीन साल, पांच साल में किया जाता है। इस विधि के न करने तक बच्चे को किसी दूसरे के हाथ नहीं दिया जाता। यह सब कार्य अपने "कुल देवता" के मन्दिर में या अपने घर में ही अपने कुल देवता के नाम से पूरे किए जाते हैं। कुल देवता का स्थान दूर हो तो परिवार के सभी सदस्य इकट्ठे होकर वहां चले जाते हैं। वहां पर जागरन आदि का आयोजन किया जाता है। सुबह समय मुहंत आदि निकाल कर पुरोहित द्वारा बाल निकाले जाते हैं यह सब करने के बाद देवता के नाम से बलि दी जाती है जिसमें बकरा आदि होता है। वहीं पर भोजन बनाकर नजदीक के लोगों को खिलाया जाता है और दूसरे दिन घर वापिस आ जाते हैं। इस दिन सभी सम्बन्धियों को बुलाया जाता हैं। परन्तु मामा का होना इसमें बहुत जरूरी होता है यह विधि मामे की गोद में बिठाकर ही पूरी की जाती है। अब सभी लोग बच्चे का "चूडाकर्ण संस्कार" जल्दी ही करवाते हैं क्योंकि बच्चे के पीछे आगे कौन भागता रहे। इस संस्कार में कुल्लू की भगौलिक स्थिति को देखते हुए कुछ कुछ भिन्नता भी है।

3. उपनयन संस्कार :

इस संस्कार को कुल्लुई में "जनेउ डालना" भी कहते हैं। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार यज्ञोपवीत धारण करने की ब्राह्मणों में (८) आठ वर्ष क्षत्रियों में (११) ग्यारह वर्ष तथा वैश्यों में (१२) बारह वर्ष की आयु बताई गई है। यज्ञोपवीत संस्कार का ब्राह्मण जाती में विशेष महत्त्व है परन्तु इसके जटिल नियमों की वजह से यह लड़के की शादी में ही पूर्ण किया जाता है। इस दिन लड़के को उपवास करना पड़ता है उबबट्न आदि लगाया जाता है। इसे समूहत कहते हैं सभी घर की स्त्रियां सूत कातती हैं और इसी सूत से यज्ञोपवीत बनाया जाता है। जो लड़के को डालना होता है। इसे पीले रंग से रंग दिया जाता है. इसकी कितनी तारें हों उसमें सनातन

धर्म तथा आर्यसमाजियों में भिन्नता है। यज्ञोपवीत डालने के लिए गुरू का चयन किया जाता है। लड़के को केवल पीली धोती तथा पांव में खड़ाऊँ पहनाई जाती है। हाथ में लाठी दी जाती है। हवन पाठ मन्त्रोचारण के साथ गुरू द्वारा यज्ञोपवीत डाला जाता है। फिर माता पिता भी तारें डालते हैं। जिसे 'अग्गर' डालना कहते हैं। तत्पश्चात एक रस्म अदा की जाती है लड़के को अपनी पीली धोती में या झोली में सभी सम्बन्धियों से भिक्षा मांगनी पड़ती हैं। सभी अपनी २ श्रद्धानुसार पैसे फल आदि डालते हैं। बाद में यज्ञोपवीत धारण करने वाले बाल-ब्रह्मचारी को इकट्ठी की हुई भिक्षा गुरू को अर्पण करनी पड़ती है। इसका यह स्नेह और आदर केवल इसी दिन ही नहीं बल्कि पूरे जीवन तक चलता है। समय-२ पर वह गुरु से शिक्षा ग्रहण करता है और आहर/आदर प्रदान करता है।

4. विवाह संस्कार

विवाह मानव जीवन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा अपरिहार्य अंग है मैं इस संस्कार के समाज द्वारा बनाये दो पहलू समझता हूँ। यह एक तो पुरूष स्त्री के यौन सम्बन्ध निर्धारण करने और दूसरे बालक के लिए अपनायें सामाधिक सम्बन्ध एवं दायित्व को निर्धारित करने की एक पृष्ठ भूमि भी उपस्थित करता है। यह संस्कार धरा पर हर मानव जाति और समाजों का केन्द्र माना जाता है। फिर भी भिन्न-२ समाजों तथा सभ्यताओं में विवाह के भिन्न २ रूप प्रचलित है। साथ ही यह हकीकत भी है कि किसी भी समाज ने इस संस्कार की उपेक्षा की हो या उसे अनिवार्य न समझा जाता हो। इस संस्कार की समाज को समाजिक आवरण देने की आवश्यकता पड़ी होगी। जब मानव को सामाजिक जीवन की आवश्यकताए पड़ी होगी समाजिक प्राणी होने के नाते ऐसा स्वभाविक भी था। इसलिए मैं समझता हूँ कि विवाह संस्कार का श्रीगणेश मानव के विकास तथा प्रयत्नशील जीवन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। ज्यादा दूर न जाता हुआ अपने विषय की ओर आता हूँ।

विवाह संस्कार के शुरू में कैसे कर्म रहे होंगे, कुछ कहना कठिन है, पर यह अवश्य है कि विवाह समाजिक जीवन में एक हर्ष व आनन्द की घटना रही होगी, इसमें भोज नृत्य घर की सजावट सभी अमोद-प्रमोद सम्बन्धित है जो एक खुशी और महत्वपूर्ण घटना के प्रतीक हैं। जो आज के युग प्रथा में प्रचलित हो गए। इस संस्कार में परिवर्तन कैसे भी रहे हो, रीति-रिवाज कितने ही बदले हों, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि विवाह आदिम मानव जाति का असीम उल्लास का एक महत्त्वपूर्ण अवसर था। इसी प्रकार के कुल्लू के जन-जीवन में भी विवाह संस्कार असीम उल्लास लेकर आता है।

जिस घर में लड़की/लड़के का विवाह हो भोज, नृत्य और उल्लास विद्यमान रहता है। कुल्लू जन-जीवन में यह तीन दिन तक चलता रहता है। लड़की/लड़के किसी के घर में भी

विवाह हो लड़की के घर पर सभी को रात भर जागना पड़ता है. और उस दिन को स्थानीय भाषा में जागरन "जागरा" कह कर पुकारते हैं। लड़के के घर में भी जागरन मनाया जाता है। लड़के के घर में उस दिन मनाते हैं जिस दिन दुल्हा दुल्हन को लेकर आता है। दूसरे दिन धाम मनायी जाती है दिन को दुल्हा और दुल्हन को पालकी में बिठा कर गांव के सभी देवताओं के मन्दिर में ले जाया जाता है। गांव की और रिश्ते की सभी स्त्रियां साथ जाती हैं, और नये दम्पतियों के लिए अच्छे भविष्य की कामना करती हैं। इसी दिन गांव व घर के पुरुष सदस्य माला बनाकर नाचते हैं। काफी अरसा पूर्व आज के दिन यह रिवाज था कि घर के चारों ओर नाचते थे। यहीं तक नहीं घर में लगी सीढ़ियों से अन्दर-२ से छत पर निकलते थे और छत पर भी नाचते थे। इसका यह अर्थ रहता था कि आज घर में नये मेहमान का आगमन हुआ है और सारा घर हर्षो उल्लास में डुबा है। इसलिए जन-जीवन में यह गाना प्रचलित है :

लाई छापरँ छाली तेरे,
बियाउऔ बिआउऔ औ

भाव कि सभी मस्ती में झूम रहे हैं तीसरे दिन "धामड़ मनाया जाता है। धाम के बारे में पढ़कर आप स्वयं अनुभव करते होंगे कि "ड़" लगाने से उसका महत्त्व कुछ कम हो गया है। इस दिन शादी में सभी काम करने वाले जिन्हें स्थानीय भाषा में "कोमरा" कहते हैं को और घर व नजदीक के रिश्तेदार इकट्ठे होकर खाना खाते हैं। उस दिन घर के सभी सदस्य इकट्ठे होते हैं और दुल्हा दुल्हन के साथ खाना खाते हैं। और दुल्हन सभी बड़ों के पांव छुती है। और सभी सदस्य जो भी नव वधू को देना चाहें देते हैं, जैसे गहने या पैसे, वैसे अब यह रिवाज ज्यादा पैसों में बदल गया हैं। इसी दिन यह पर्व सम्पन्न होता है।

5. मृत्यु संस्कार :

जो मानव सृष्टि में मानव रुपी चोला लेकर आया है। उसे इस चोले को यहीं छोड़ कर जाना है। यह तो सत्य है यह संस्कार हर मानव जाति और समाज में होता है।

कुल्लू जनजीवन में जब किसी प्राणी की मृत्यु होती है तो मरने से कुछ देर पहले या प्राणी का श्वास निकलने से पहले गंगा के जल की बूंदें प्राणी के मुख में डाली जाती हैं। इसी समय गाय का दान भी किया जाता है, बाकी दान आदि भी इसी समय कर लिए जाते हैं। प्राणी के प्राण निकलते ही घर में रोना शुरू होता है। जिसे स्थानीय भाषा में "रूआणा" कहते हैं। जिसकी लय बाकी आम रोने से भिन्न होती है, साथ ही शंख भी बजाया जाता है। जिसकी आवाज सुनकर गांव व आस पड़ोस में पता लग जाता है, सभी नर-नारी शोकग्रस्त घर में

पहुंच कर परिवार के सदस्यों को सांतवना देते हैं। गाँव के पुरूष मृत प्राणी के लिए पालकी तैयार करते हैं, यदि मृत बूढ़ा हो या स्त्री पति से पहले गुजर जाए तो पूरे साज जो कुल्लू में प्रचलित हैं; के साथ शमशान-घाट को ले जाया जाता है। यदि किसी जवान की मृत्यु हो गई हो तो यह सब नहीं होता, पालकी, बना कर प्राणी को उसमें डाल कर शमशान घाट की ओर ले जाया जाता है। पालकी चार प्राणीयों की सहायता से उठाई जाती है। शमशान घाट में चिता बना कर पुरोहित द्वारा मन्त्रोंचारण सहित बड़े लड़के के हाथों चिता में आग लगाई जाती है। आग लगाने के बाद कपाल मोचन (जब तक सर नहीं जलता) तक सभी वहीं बैठे रहते हैं। उसके बाद दूर और गांव के लोग लकड़ी डाल कर घर चले जाते हैं। परन्तु नजदीक के रिश्ते के और मृत प्राणी के दोस्त आदि वहीं अन्तिम समय तक बैठे रहते हैं। प्राणी का दाह संस्कार करके प्राणी के "फूल" घर लाए जाते हैं। घर में प्राणी के हाथ से जलाया दीया रखा जाता है। जो १० दिन तक जलता रहता है। गांव के लोग रात को उस घर में आते हैं। स्थानीय भाषा में इसे "दिउआ पौहरना" कहते हैं। १० दिन बाद दसवें दिन दिये को सुबह उठाया जाता है और तेरहवें दिन घर की शुद्धि भी होती है। उसी दिन होंग खिलाया जाता है। सभी रिश्तेदार रोटी बनाकर उस घर को लाते हैं। उसी दिन क्रिया कर्म किया जाता है। प्राणी के नाम आज के दिन दान किया जाता है। परिवार और गांव व नजदीकी रिश्तेदार सभी इस दिन इकट्ठे हो कर भोजन आदि करते हैं। इस प्रकार हर माह प्राणी के नाम से भोजन कराया जाता है। साल के बाद "बारखी" मनायी जाती है। जिसे स्थानीय भाषा में (वारखी) कहते हैं। इसी तरह (दवरखी) दो साल उपरान्त फिर (तवरखी) तीन साल बाद और चार साल बाद (चवरखा) स्थानीय भाषा में कहते हैं, मनाया जाता है। इसी प्रकार यह संस्कार सारे कुल्लू में मनाया जाता है।

परिमहल, शिमला-9

कुलुई का व्याकरण

● मौलू राम ठाकुर

वर्ण विचार :

भाषा की छोटी-से-छोटी मूल ध्वनि जिस के और टुकडे न हों वर्ण कहलाती है। इसे अक्षर भी कहते हैं अर्थात् जिस का क्षय नहीं होता। वर्ण के मूलतः दो भाग होते हैं : (१) स्वर, और (२) व्यंजन।

स्वर :

जिन अक्षरों के उच्चारण में किसी दूसरे वर्ण की सहायता की आवश्यकता नहीं होती उन्हे स्वर कहा जाता है। कुलुई में हिन्दी की अपेक्षा अधिक स्वर हैं। जो मूलतः निम्नलिखित हैं :-

अ आ इ ई उ ऊ ए ऍ ऐ ओ ऑ औ इन में से ऍ और ऑ ऐसे स्वर हैं जिन्हे हम हिन्दी में नहीं देखते। इन में 'ऍ' स्वर को 'ए' और 'ऐ' तथा 'ऑ' स्वर को 'ओ' और 'औ' के बीच की ध्वनियां समझा जाना चाहिए। उच्चारण के बल के आधार पर स्वरों की तीन श्रेणियां मानी जाती हैं :-

(क) ह्रस्व स्वर - जिन स्वरों के उच्चारण में कम से कम समय लगता है उन्हे ह्रस्व या मूल स्वर कहते हैं। कुलुई में अ इ और उ ह्रस्व स्वर हैं।

(ख) दीर्घ स्वर– जिन के उच्चारण में ह्रस्व से लगभग दुगना समय लगता है उन्हे दीर्घ स्वर कहते हैं। कुलुई में आ, ई, ऊ, ए, ऍ ऐ, ओ, ऑ, औ दीर्घ स्वर हैं।

(ग) प्लुत स्वर—ह्रस्व से लगभग तिगुने समय में उच्चरित होने वाले स्वरों को प्लुत स्वर कहते हैं। कुलुई में इन का विशेष महत्त्व है। बल और जोर देने के लिए उपर्युक्त सभी स्वर प्लुत हो जाते हैं; जैसे का३ला (बिल्कुल काला), उ३थड़ा (बहुत ऊंचा) नि३शटा (बहुत नीचे या छोटा) आदि।

अनुनासिकता— कुलुई में सभी स्वरों के अनुनासिक रूप मिलते हैं। अनुनासिकता में स्वरों का उच्चारण स्थान तो वही रहता है, परन्तु उच्चारण करते समय बाहर निकलने वाली वायु मुंह और नाक से साथ साथ निकलती है, जैसे - आंजा (अंत्र, आंतड़ियां), पिंजण (पिंजन) मुंड (सिर) आदि।

व्यंजन :

जो अक्षर स्वतन्त्र रूप से उच्चरित न हो कर स्वरों की सहायता से उच्चरित किये जाते हैं, उन्हें व्यंजन कहते हैं। स्वरों की भांति ही व्यंजन ध्वनियां भी कुलुई में हिन्दी से अधिक हैं। अतिरिक्त ध्वनियों में से वत्सर्य स्पर्श संघर्षी 'च़', 'छ़', 'ज़', और 'झ़' इस की विशिष्ट ध्वनियां है, जो हिन्दी में पाई नहीं जाती। इसी तरह वत्सर्य अन्तस्थ 'ल' के साथ साथ कुलुई में वैदिक कालीन मूर्धन्य 'ल़' ध्वनि भी पाई जाती है। उच्चारण के आधार पर कुलुई ध्वनियों को इन श्रेणियों में रखा जा सकता है—(क) कण्ठ्य ध्वनियां वे हैं जिन के उच्चारण में जीभ का पश्च-भाग कोमल तालु से स्पर्श करता है, (ख) तालव्य, जिन में जीभ का अग्र भाग कठोर तालु के अग्र-भाग से टकराता है, (ग) मूर्धन्य, इन में जीभ की नोक मूर्धा से टकराती है. (घ) वत्सर्य, इन में जीभ का अग्र-भाग वर्त्स को छूता है, (ङ) दन्तय, इन के उच्चारण में जीभ का अग्र-भाग ऊपर के दान्तों के अग्र-भाग को स्पर्श करता है, (च) ओष्ठ्य, इन के उच्चारण में ऊपर और नीचे के दोनों ओष्ठ आपस में छूते हैं। इस दृष्टि से कुलुई के व्यंजनों को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :—

स्पर्श :

कण्ठ्य:	क्,	ख्,	ग्,	घ्
तालव्य:	च्,	छ्,	ज्,	झ्
मूर्धन्य:	ट्,	ठ्,	ड्,	ढ्
वत्सर्य:	च़्,	छ़्,	ज़्,	झ़्
दन्तय:	त्,	थ्,	द्,	ध्
ओष्ठ्य:	प्,	फ्,	ब्,	भ्

अनुनासिक :

अल्प-प्राण:	ङ्,	ञ्,	ण्	न्	म्
महा-प्राण			ण्ह्	न्ह,	म्ह,

अन्तस्थ :

अल्प-प्राण:	य्,	र्,	ल्,	ल़्,	व्
महा-प्राण:	य्ह,	र्ह,	ल्ह्,	ल़्ह्,	

ऊष्म :

श्, स्, स्ह्, ह्,

कुलुई में वत्सर्य चवर्ग को तालव्य चवर्ग से भिन्न अक्षर मानने के पक्ष में निम्नलिखित न्यूनतम-विरोधी युग्मो के उदाहरण दिए जाते हैं :

चोर (शहतूत की किस्म का वृक्ष)	चोऱ (चोरी करने वाला)
चांबड़ा (पतीला)	चांबड़ा (चमड़ा)
कचेड़ा (खमीर)	कचे़ड़ा (शरारतें)
दाची (दरांती)	दाची़ (जांच ली)
चौखिणा (सड़ जाना)	चौ़खिणा (उठाया जाना)
छार (पानी से निकाल)	छा़र (क्षार)
मौछी (मक्खी)	मौ़छी (मछली)
छौण (क्षण, समय)	छौ़ण (छत लगाना)
जुक (नीचे)	जु़क (मार)
पूजणा (पहुंचना)	पूज़णा (पूजा करना)
झौड़ (तंग, परन्तु लम्बा खेत)	झौ़ड़ (गिर जा)
झाड़ (इकट्ठा कर)	झा़ड़ (गिरा दे)

इसी तरह वर्त्स्य 'ल' और मूर्धन्य 'ल़' के भेद को भी निम्नलिखित युग्मो से स्पष्ट किया जा सकता है :—

काल (कल)	काल़ (अकाल)
काला (मूर्ख)	काल़ा (काला रंग)
गुआला (खो देगा)	गुआल़ा (गवाला)
लाला (लाला जी)	लाल़ा (राल, सं. लाला)
मौल (पहलवान)	मौल़ (गोबर)
खौल (खाल)	खौल़ (खलयान)

संज्ञा :

जो शब्द किसी वस्तु, स्थान, भाव और मनुष्य आदि के नाम का बोध कराए उसे संज्ञा

कहते हैं। हिन्दी और हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह कुल्लूई में भी संज्ञा शब्द पांच वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं, यथा —

१. व्यक्ति वाचक— जो किसी एक ही व्यक्ति, स्थान या वस्तु का बोध कराता हो उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं, जैसे कुल्लू, नानक, सरवरी, कमला आदि।

२. जातिवाचक— जिस शब्द से किसी पूरी जाति का बोध हो, यथा — कुत्ता, बराली (बिल्ली), गाई (गौ), नौई (नदी), भेड़ आदि।

३. समूहवाचक— जिस संज्ञा से अनेक व्यक्तियों या पदार्थों के समूह का ज्ञान होता है - छुंड (भेड़ा रा छुंड), गोण (माहूँ रा गोण), गुछा (कुंजी रा गुछा), राश (नाजे री राश) आदि।

४. द्रव्यवाचक— जिस से किसी द्रव्य का ज्ञान हों - घीऊ (घी), सूना (सोना), रूपा (चादी), लोहा आदि।

५. भाववाचक – जिस से किसी गुण, दशा, भाव अथवा क्रिया का बोध होता है, यथा निहारा (अंधेरा), सुख, दुख, शोख (प्यास), भूख दोश आदि।

कुल्लूई में भाववाचक संज्ञा कई प्रत्यय लगा कर बनती है, उदाहरणार्थ : –

१. कुछ क्रिया शब्दों के धातु रूप में 'आई' प्रत्यय लगाने से भाववाचक संज्ञा बनती है। ऐसे संयोग से पूर्व मूल धातु में परिवर्तन आता है : –

क्रिया	भाववाचक संज्ञा	क्रिया	भाववाचक संज्ञा
कौतणा	कताई	चिणना	चणाई
चौकणा	चकाई	चौरना	चराई
भौरना	भराई	लिखणा	लखाई
बुणना	बणाई	ढोणा	ढुआई

२. कुछ क्रियाओं की स्थिति में भाववाचक संज्ञा मूल क्रिया के 'ना' अथवा 'णा' में से 'आ' की मात्रा हटाने से बनती है :—

पीशणा	पीशण	बाहणा	बाहण
कूटणा	कूटण	निंडणा	निंडण
जीणा	जीण	लेसणा	लेसण

३ कुछ अन्य क्रियाएं हैं जो अपने धातु रूप में भाववाचक संज्ञाएं होती हैं :

हारना	हार	खुंगणा	खुंग
जीतणा	जीत	थूकणा	थूक
चोपड़ना	चोपड़	हौसणा	हौस

४ आज कल कुलुई में हिन्दी की प्रवृत्तियां भी आने लगी हैं, जैसे-

क) विशेषण में 'आई' प्रत्यय लगा कर, जैसे लोमा से लमाई, चौड़ा से चड़ाई, सोच से सचाई आदि।

ख) 'हट' या 'वट' लगाकर जैसे— मलाणा से मलावट, सजाणा से सजावट, थकणा से थकावट, घबराणा से घबराहट, रोकणा से रुकावट आदि।

ग) विशेषण में 'ई' लगाने से – चोर से चोरी, चलाक से चलाकी, कंजूस से कंजूसी, गरम से गरमी आदि।

५. कुछ क्रियाओं की धातुओं में 'णी' प्रत्यय लगाने से भाववाचक संज्ञा बनती है, यथा-सोठणा (सोचना) से 'सोठणी', कोमणा (कांपना) से 'कोमणी', कीलणा से 'कीलणी' आदि।

६. क्रिया के प्रेरणार्थक रूप में 'उण' प्रत्यय लगाने से – बचाणा से 'बचाउण', पीशणा से प्रेर० पशाणा से भाव० 'पशाउण' पलाणा (औज़ार तेज़ कराना) से 'पलाउण', खेलणा से प्रेर० कलयाणा से भाव०सं० 'खलयाउण' आदि।

७. क्रिया के धातु रूप में 'ई' प्रत्यय लगाने से भी भाववाचक संज्ञा बनती है; जैसे मुनणा (ऊन काटना) से 'मुनी', चोरना से चोरी, भूरना से भूरी, ग्राहणा से 'ग्राही' (अंशदान) आदि।

कुलुई में संज्ञा के लघु रूप का प्रयोग अत्यधिक है। ये लघु रूप 'ऊ', 'टू', 'ड़ू', या 'लू' प्रत्यय लगाने से बनते हैं, जैसे—घोड़ा से घाड़ू, कुरता से कुरतू, मेज़ से मेजटू, हौथ से हौथड़ू, कोट से कोटलू आदि।

लिंग :

हिन्दी की तरह कुलुई में भी लिंग दो हैं—पुलिंग और स्त्रीलिंग। सभी संज्ञा शब्द इन्हीं दो लिंगों में विभक्त हैं। संस्कृत की भांति कुलुई में नपुंसक लिंग नहीं होता। कुलुई के लिंग विभेद से सम्बन्धित कुछ विशिष्टताएं इस प्रकार हैं :—

१. प्राणवाचक जीवों का लिंग-निर्धारण प्राकृतिक लिंग-भेद पर होता है। जैसे बौलद, बौकरा, कुत्ता, मरद, कुकड़ आदि सभी पुलिंग है तथा उन की मादा जातियां, गाई, बौकरी, कुत्ती, बेटड़ी, कुकड़ी स्त्रीलिंग हैं।

२. जानदारी प्राणियों में लिंग सम्बन्धी कुछ विचित्र स्थितियां हैं, जैसे गीदड़, इलकण, शियारी, ईण, ढरीण, मौछी, शाली आदि यद्यपि नर भी होते है और मादा भी, परन्तु ये सर्वदा स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं।

३. इस के विपरीत काउड़ा (कौवा) उल्लू, बिछू, बरेड़ा (पक्षी का बच्चा) माहूँ (मधुमक्खी) आदि जानवर हमेशा पुलिंग में ही गिने ज ते है।

४. निर्जीव संज्ञाओं में वस्तु के आकार के आधार पर प्राय: लिंग-भेद होता है। गुरुत्व आकार की वस्तुएं प्राय: पुलिंग होती हैं, और लघुत्व आकार की स्त्रीलिंग। उदाहरणार्थ वृक्ष यदि बहुत बड़ा हो तो 'बूटा' पुलिंग है। परन्तु यदि वृक्ष छोटा हो या लम्बा परन्तु बारीक हो तो 'बूटी' स्त्रीलिंग है। इसी प्रकार पुलिंग-स्त्रीलिंग रूप क्रमश: इस तरह हैं— शौठा पु. शोठी स्त्री. कुरता-कुरती, टोपा-टोपी, थाल-थाली, शाणा-शाणी, दाच-दाची, रोट-रोटी, पौट्ट-पौटी आदि।

५. भाववाचक और अमूर्त संज्ञा शब्दों की स्थिति में लिंग ज्ञान प्राय: शब्दान्त के आधार पर ही होता है। इ-ईकारान्त शब्द प्राय: स्त्रीलिंग होते हैं और शेष: पुलिंग (अकारान्त को छोड़कर)। उदाहरणार्थ, खेऊ और जूनी दोनों का अर्थ 'कष्ट' है, परन्तु 'खेऊ' पुलिंग है और 'जूनी' स्त्रीलिंग। भूरी और लोभ का भी प्राय: एक ही भाव है 'प्यार'। परन्तु 'भूरी' स्त्रीलिंग है और 'लोभ' पुलिंग। परन्तु अकारान्त शब्दों की स्थिति में यह नियम निर्विवाद नहीं है। अकारान्त शब्द समान रूप में स्त्रीलिंग और पुलिंग पाए जाते हैं।

पुल्लिग से स्त्रीलिंग बनाने के कुछ नियम :

१. अकारान्त पुल्लिग शब्दों में 'ई' मात्रा जोड़ने से स्त्रीलिंग बनते हैं—बांदर से बांदरी, कदाल से कदाली, गौभ से गौभी, कुकड़ से कुकड़ी, काकड़ से काकड़ी, माम से मामी।

२. आकारान्त शब्दों के 'आ' को 'ई' द्वारा प्रतिस्थापित करने से स्त्रीलिंग बनते हैं—घोड़ा से घोड़ी, कुत्ता कुत्ती, कलेशा कलेशी, शाण्हा शाण्ही, बेटा—बेटी, बौकरा—बौकरी, खापरा खापरी, लाड़ा - लाड़ी, साला साली आदि।

३, ईकारान्त शब्दों में 'ई' के स्थान पर 'अण' या 'अन' प्रयुक्त होता है, यथा हेसी—हेसण, नेगी—नेगण, नाती नातण, हाथी—हाथण, माली - मालण, धोबी धोबण, घोरी—घोरन, तेली तेलण आदि। इसी आधार पर कई बार अकारान्त शब्द में भी 'ण' या 'न' जोड़ने से स्त्रीलिंग शब्द बनते हैं—रीछ से रीछण, गूर से गूरन, चमार से चमारन, सेठ से सेठण, बराघ से बराघण आदि।

४. उकारान्त शब्दों में भी 'ऊ' को 'ई' द्वारा प्रतिस्थापित करने से स्त्रीलिंग बनते हैं दादू से दादी, नानू से नानी, शोहरू से शोहरी, छेलू से छेली, बौछू से बौछी आदि।

५. कुछ सम्बन्धसूचक प्राणीवाचक पुल्लिग शब्दों के आगे 'आणी' या 'आनी' प्रत्यय लगाने से स्त्रीलिंग रूप बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में आरम्भिक दीर्घ स्वर भी ह्रस्व में बदल जाता है—माश्टर मश्टराणी, ठाकर ठकराणी, नोकर—नोकराणी, पंडत पंडताणी जेठिआ जठाणी, देउर दराणी आदि।

६. कुछ शब्दों के स्वतंत्र स्त्रीलिग शब्द होते हैं, यथा—भाई—बेबी, बापू आमा, मनाल—कौरडी, लौढ़ भेड़, शौहुरा—शौशू, राजा—राणी, मौरद - बेटड़ी, बाल्द गाई, बियाहू जोई,

वचन :

हिन्दी की तरह कुलुई में भी दो वचन हैं **एक वचन** जिस से एकत्व का बोध होता है, तथा **बहुवचन** जिस से अनेक का बोध होता है। संस्कृत की तरह द्विवचन रूप कुलुई में नहीं होता। वचन सम्बन्धी कुलुई की कुछ विशिष्टताएं इस प्रकार हैं ;

१. सभी प्रकार के पुलिग संज्ञा शब्दों में से केवल आकागन्त शब्दों के ही बहुवचन रूप बनते हैं जो हिन्दी के समान होते हैं, यथा—बेटा से बहुवचन बेटे, शोठा सी शोठे, काउड़ा से काउड़े, टेंडा से टेंडे, थोंबा से थोंबे, बूटा से बूटे आदि। यह स्थिति हिन्दी से भिन्न नहीं हैं।

२. परन्तु हिन्दी में कारक-प्रत्यय लगने पर सभी प्रकार के पुलिग शब्द बहुवचन में रूप बदलते हैं, जैसे हाथी ने हाथियों ने, डाकू को--डाकूओं को आदि। परन्तु कुलुई में कारक-चिन्ह से पहले भी कोई रूप नहीं बनते 'हाथी बे देआ' का अर्थ 'हाथी को दो' भी है और हाथियों को दो' भी]

३ स्त्रीलिग शब्दों के बारे में भी कुछ ऐसी ही स्थिति है। वहां अकारान्त और ऊंकारान्त शब्दों को छोड़ शेष किसी प्रकार के स्त्रीलिंग एक बचन के रूप बहुवचन के लिए नहीं बदलते। यह हिन्दी से भिन्न है। हिन्दी में 'लड़की' से बहुवचन 'लड़कियां बनता है। परन्तु कुलुई में 'शोहरी' से बहुवचन रूप 'शोहरी ही रहता है।

४. उकारान्त स्त्रीलिग शब्दों के बहुवचन 'आ' जोड़ने से बनते हैं, यथा जूं से जूंआ, बरू से बरूआ आदि।

५. कुलुई में अकारान्त स्त्रीलिग संज्ञा शब्दों के बहुवचन रूप दो तरह से बनते हैं।

(क) मूल अकारान्त शब्द में 'आ' जोड़ने से, जैसे भेड़ एकवचन से भेड़ा बहुवचन (भेड़ें), टांग– टांगा, खोल-खोला (खोल), आंज-आंजा (आंते), लौत-लौता, छड़िग-छड़िगा (चिंगारियां), गल्ल-गल्ला (बातें). तार-तारा (तारें)।

कुलुई के 'वचन' तथा 'लिग' से सम्बन्धित विस्तारपूर्ण विवेचन के लिए देखें : 'पहाड़ी भाषा—कुलुई के विशेष संदर्भ में ले० मौलूराम ठाकुर, प्रकाशक सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-७१

(ख) मूल अकारान्त शब्द में 'ई' जोड़ने से, जैसे – रात एकवचन से राती बहुवचन (रातें), कात-कार्ता (मोटी ऊन काटने की कैंची), जात-जाति (जातियां), का:ल-का:ली, टोल्ही शाल्ह-शाल्ही, ग्रार-ग्रारी।

कारक :

हिन्दी और अन्य कतिपय भारतीय आर्य भाषाओं के समान कुलुई में भी आठ कारकों का प्रयोग होता है। इन सब का आधार संस्कृत है यद्यपि संस्कृत की विभिन्न विभक्तियां अब समाप्त हो रही हैं और उनके स्थान पर स्वतन्त्र परसर्गों का प्रयोग होता है। कुलुई के विभिन्न कारक-चिन्ह हिन्दी से कुछ, भिन्न हैं जो इस प्रकार हैं—

कारक	विभक्तियां
कर्त्ता	१. बिना प्रत्यय
	२. एँ
कर्म	१. बिना प्रत्यय
	२. बें
करण	एँ, लाइवा (लाई), सोगे
सम्प्रदाय	बें, तांइये (तांई)
अपादान	न
सम्बन्ध	रा, रे, री; ना, बे, नी; का, के, की
अधिकरण	न, मोझें, पांघें, परखालें,
सम्बोधन	एई, एऊ

'वचन' शीर्ष के अन्तर्गत किए विवेचन के अनुसार नीचे विभिन्न अक्षरों में अन्त होने वाले पुलिंग और स्त्रीलिंग शब्दों के विभिन्न कारकों में रूप दिए जाते हैं।

	अकारान्त पुलिंग 'बौल्द' (बैल)		अकारान्त स्त्रीलिंग 'भेड़'	
कारक	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	१ बौल्द	१ बौल्द	१ भेड़	१ भेड़
	२ बौल्दें	२ बौल्दें	२ भेड़ँ	२ भेड़ें
कर्म	बौल्दा-बें	बौल्दा-बें	भेड़ा-बें	भेड़ा-बें

करण	बौल्दे (बौल्दा सोंगे-लाइया)	बौल्दे (बौल्दा सोंगे-लाइया)
सम्प्रदान	बौल्दा-बें (बौल्दा री ताइंये)	बौल्दा-बें बौल्दा री तांइये
अपादान	बौल्दा-न	बौल्दा-न
सम्बन्ध	बोल्दा रा-रे-री	बौल्दा रा-रे-री
अधिकरण	१ बौल्दा-ने (मांझे) २ बौल्दा पांधे	१ बौल्दा-न (मोंझें) २ बौल्दा पांधे
सम्बोधन	एई बौल्दा	एई बौल्दो

अकारान्त पुल्लिग 'घोड़ा'

कर्त्ता	१ घोड़ा २ घोड़े	१ घोड़े २ घोड़े
कर्म	घोड़ा-वे	घोड़े-बे
करण	घोड़े (घोड़ा सोंगे-लाइया)	घोड़े घोड़े सोंगे-लाइया)
सम्प्र.	घोड़ा-बे (घोड़ा री तांइये)	घोड़े-बे (घोड़े री तांइये)
अपा.	घोड़ा-न	घोड़े-न
सम्ब.	घोड़ा रा-रे-री	घोड़े-रा-रे-री
अधि.	घोड़ा-न (पांधे)	घोड़े-न (पांधे)
सम्बो.	एई घोड़ेआ	एई घोड़ेओ

ईकारान्त पुल्लिग 'नेगी'

कर्ता	१ नेगी २ नेगीए	१ नेगी २ नेगीएँ
कर्म	नेगी-वे	नेगी-वे
करण	नेगीए (नेगी सोंगे)	नेगीए (नेगी सोंगे)

भेड़ें (भेड़ां सोंगे-लाइया)	भेड़ें (भेड़ां सोगे-लाइया)
भेड़ा-बे (भेड़ा री तांइये)	भेड़ा-बे (भेड़ा री तांइये)
भेड़ा-न	भेड़ा-व
भेड़ा रा-रे-री	भेड़ा रा-रे-री
भेड़ा-न (मोंझे) २ भेड़ा पांधे	भेड़ा-न (मोंझे) भेड़ा पांधे
एऊ भेड़े	एऊ भेड़ो

बेहण (वहिन)

१ बेहण २ बेहणी	१ बेहणी २ बेहणीएँ
बेहणी-वे	बेहणी बे
बेहणीए (बेहणी सोंगे)	बेहणीएँ (बेहणी सोंगे)
बेहणी-बे (बेहणी री तांइये)	बेहणी-बे (बेहणी री तांइये)
बेहणी-न	बेहणी-न
बेहणीं रा-रे-री	बेहणी-रा-रे-री
बेहणी-न (मोंझे)	बेहणी-न (मोंझे)
एऊ बेहणीए	एऊ बेहणीओ

अकारान्त पुल्लिग 'शोहरू' लड़का

१ शोहरू २ शोहरूए	१ शोहरू २ शोहरूए
शोहरू-बे	शोहरू-बे
शोहरूए (शोहरू सोंगे)	शोहरूए (शोहरू सोंगे)

सम्प्र.	नेगी-बे (नेगी री तांइये)	नेगी-बे (नेगी री तांइये)	शोहरू- बें (शोहरू री तांइये)	शोहरू बें (शोहरू री तांईये)
अपा.	नेगी-न	नेगी-न	शोहरू-न	शोहरू-न
सम्ब.	नेगी रा-रे-री	नेगी रा-रे-री	शोहरू रा-रे-री	शोहरू रा-रे-री
अधि.	नेगी-न (पांधें)	नेगी-न पांधें)	शोहरू न (पांधे)	शोहरू-न (पांधे)
सम्बो.	एई नेगीआ	एई नेगीओ	एई शोहरूआ	एई शोहरूओ

अकारान्त स्त्रीलिंग 'आमा' — **ईकारान्त स्त्रीलिंग 'शोहरी' (लड़की)**

कर्ता	१ आमा २ आमें	१ आमा २ आमें	१ शोहरी २ शोहरीएं	१ शोहरी २ शोहरीएं
कर्म	आमा-बें	आमा बें	शोहरी-बे	शोहरी-बे
करण	आमें	आमें	शोहरीए	शोहरीए
सम्प्र.	आमा-बें	आमा-बें	शोहरी-बे	शोहरी-बे
अपा.	आमा-न	आमा-न	शोहरी-न	शोहरी-न
सम्ब.	आमा रा-रे-री	आमा रा-रे-री	शोहरी रा-रे-री	शोहरी रा-रे-री
अधि.	आमा-न	आमा-ने	शोहरी-न	शोहरी-न
सम्बो.	एऊ आमें	एऊ आमेओ	एऊ शोहरीए	शोहरीओ

अकारान्त स्त्रीलिंग शौशू (सास) — **अकारान्त स्त्रीलिंग जूं ('जूं')**

कर्त्ता	१ शौशू २ शौशूएं	१ शौशू २ शौशूएं	१ जूं २ जूंएं	१ जूंआ २ जूंएं
कर्म	शौशू-बें	शौशू बें	जूंआ-बें	जूआ-बें
करण	शौशूए	शौशूए	जूएं	जूएं
सम्प्र.	शौशू-बें	शौशू-बें	जूंआ-बें	जूंआ-बें
अपा.	शौशू-न	शौशू-न	जूंआ रा-रे-री	जूंआ रा-रे-री
सम्ब.	शौशू रा-रे-री	शौशू-रा-रे-री		
अधि.	शौशू-न	शौशू-न	जूंआ-न	जूंआ-न
सम्बो.	एऊ शौशूएं	एऊ शौशूओ	एऊ जूंएं	एऊ जूंओ

सम्बोधन में कारक प्रत्यय प्रमुखतः रा रे-री हैं। निजवाचक सर्वनाम में ये प्रत्यय णा-णे-णी (आपणा: आपणे, आपणी) होते हैं। परन्तु अकारान्त कालवाचक क्रियाविशेषण में ये प्रत्यय का-के-की में बदलते हैं, यथा-औजका (आज का), कालका (कल का), पौरका (पिछले वर्ष का), दोथका (सेवेरे का) आदि।

सर्वनाम

संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्दो को सर्वनाम कहा जाता है। कुलुई में भी हिन्दी की तरह छः प्रकार के सर्वनाम हैं—

१. पुरुषवाचक सर्वनाम — जिन शब्दो से कहने वाले, सुनने वाले तथा कहे जाने वाले का बोध हो उन्हें पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। इस के पुनः तीन भेद है — १. उत्तम पुरूष, जो कहने वाले से सम्बधित होता है, यथा मैं, हाऊं, मूं, और आसे; २. मध्यम पुरुष, जिस से सुनने वाले का ज्ञान होता है, जैसे तू, तुसे; तथा अन्यपुरुष अर्थात् जिस के बारे में कहा या लिखा जाए, जैसे — सो(वह), ते (वे), तिऊंआ (वे)। उत्तम पुरुष में मूल शब्द 'हांऊ' है। 'मूं' इस का विकारी रूप है। परन्तु जहां हिन्दी में 'मैंने' का अर्थ होता है वहां 'मूं' या 'हाऊं' की बिजाय 'मैं' शब्द का प्रयोग होता है। इस सम्बन्ध में हिन्दी से एक अन्य भिन्नता अन्य-पुरुष के क्षेत्र में है। यहां अन्य पुरुष एकवचन में पुलिंग और स्त्रीलिंग के अलग अलग रूप हैं। असल रूप आगे देखने में आएंगे।

२. निजवाचक सर्वनाम जहा निजत्व का बोध होता है उसे निजवाचक सर्वनाम कहते हैं। कुलुई में यह शब्द 'आपु' है। यह हिन्दी में प्रयुक्त 'तु' या 'तुम' के लिए आदरसूचक शब्द 'आप' नहीं है। 'आपु' का प्रयोग 'स्वयं' जैसा है। 'आपु' के एकवचन और बहुवचन में समान रूप रहते हैं तथा षष्टि विभक्ति को छोड़कर शेष कारक प्रत्यय से पूर्व इस में कोई विकार नहीं आता:, जैसे आपुए (अपने-आप), आपु वे (अपने को), आपु सौंगे (अपने साथ)। सम्बन्ध कारक में केवल निजवाचक सर्वनाम के साथ णा, णे, णी प्रत्यय का प्रयोग होता है। तब आपु की अन्तिम 'उ' मात्रा का लोप हो जाता है, यथा—आपणा, आपणे, आपणी।

३. निश्चयवाचक सर्वनाम कुलुई में निश्चयवाचक सर्वनाम दो हैं— 'ए' और 'सो'। परन्तु दोनों में निकटवर्ती और दूरवर्ती का भेद नही, जैसा कि प्रायः अन्य भाषाओं में होता है। इन दोनों में भेद प्रत्यक्ष और परोक्ष का है। जो प्रत्यक्ष है वह 'ए' (यह) है, जो परोक्ष हो वह 'सो' (वह)। दूरवर्ती भाव के लिए 'ए' के साथ अन्य शब्द जोड़ना आवश्यक है, जैसे — ए की सा? (यह क्या है), पारला ए की सा? (पार का यह क्या है अर्थात् वह क्या है। यह दूरवर्ती के लिए 'सो (वह) की सा' नहीं कह सकते। इस में 'वह क्या है' का भाव प्रकट नहीं किया जा सकता, क्योंकि 'सो' के परोक्ष होने के कारण 'सो की थी' प्रयोग होगा जिस का अर्थ

दूरवर्ती न हो कर परोक्ष-वर्ती होगा अर्थात् 'वह क्या था'। 'ए' का तिर्यक रुप 'एई' और 'सो' का 'तेई' है। बहुवचन में 'एई' से 'इन्हा' और तेई से तिन्हां रुप बनते हैं।

४. अनिश्चय वाचकः अनिश्चयवाचक सर्वनाम के लिए कुलुई में 'कोई' और किछ' का प्रयोग होता है। परन्तु इन में केवल 'कोई' के सब कारकों में रुपान्तरण होता है, 'किछ' का नहीं। 'किछ' का प्रयोग बहुधा विशेषण के समान होता है। 'कोई' की कारक रचना केवल एकवचन में होती है। विभिन्न कारक प्रत्ययों के साथ प्रयोग करते हुए इस में किसी तरह का विकार नहीं आता। इस दृष्टि से इस का प्रयोग हिन्दी 'कोई' से भिन्न है, क्योंकि हिन्दी में 'कोई' के साथ जब विभक्ति प्रत्यय लगते हैं तो यह 'किसी' में बदल जाता है। परन्तु कुलुई में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं आता, जैसे -कोइएँ (किसी ने), कोई-बे (किसी को), कोई-न (किसी से), कोईरा (किसी का) आदि।

५. सम्बन्धवाचक सर्वनाम — कुलुई में सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'जो' है। यह 'ज़ुण' और 'ज़ौस' रूप में भी प्रचलित है। वचन या लिंग के भेद पर इस में परिवर्तन नहीं आता। कारक प्रत्यय से पूर्व 'जो' या '(ज़ुण)' 'ज़ुणी' में बदल जाता है, और उसी रूप में कारक प्रत्यय जुड़ते हैं, यथा ज़ुणीएँ (जिस ने), ज़ुणी-बे (जिस को), ज़ुणी-न (जिस से), जुणी-रा (जिस का) आदि। यह स्पष्ट है कि कुलुई में 'ज़ुणी' दोनों वचनों और दोनों लिंगों के लिए प्रयुक्त होता है। इस प्रकार वचन के आधार पर यह हिन्दी से भिन्न है। हिन्दी के तिर्यक रूप एकवचन में 'जिस' और बहुवचन में 'जिन' है। 'जौस' का सप्रत्यय रूप 'जोसा या 'जोसी' है।

६. प्रश्नवाचक सर्वनामः— कुलुई में प्रश्नवाचक सर्वनाम दो हैं— 'कुण' और 'की'। 'कुण' का प्रयोग सजीव प्राणियों के लिए होता है और 'की' निर्जीव' वस्तुओं के लिए, जैसे तुसे री धीरे कुण आहुदा (आप के यहां कौन आया है) और मेरी मुठी न की सा? (मेरी मुठी में क्या है)। इस दृष्टि से 'कुण' अनिश्चयवाचक 'कोई' और 'की' अनिश्चयवाचक 'किछ' का सामानानुकूल है।

कारक प्रत्यय लगने पर कुण शब्द 'कुणी' में बदल जाता है। लिंग के आधार पर 'कुण' या इस के विकृत रूप 'कुणी' में कोई अन्तर नहीं आता. जैसे — कुण आऊ (कौन आया), कुण आई (कौन आई), परन्तु वचन के आधार पर अप्रत्यय कर्त्ताकारक अस्तित्व सूचक में 'कुण' एकवचन कुणा' बहुवचन में बदल जाता है - बाहरे कुण सा (बाहर कौन है), तथा बाहरे कुणा सी (बाहर कौन हैं)। इस के विपरीत अन्य कारकों में प्रत्यय लगने पर वचन के आधार पर भी कोई भेद नहीं आता, बल्कि 'कुण' का विकृत रूप 'कुणी' दोनों वचनों में समान रूप से प्रचलितहैं — कुणिए (किस ने), कुणी बे (किस को), कुणी-न (किस से) कुणी री तेईंए (किस के लिए), कुणी पांधे (किस पर) आदि।

'जुण' के 'जौस' रूप की तरह 'कुण' का एक दूसरा रूप कौस भी है। यह कर्त्ताकारक अप्रत्यय रूप में प्रयुक्त नहीं होता, केवल कारक प्रत्ययों के साथ ही इस का प्रयोग मिलता है। तब यह 'कौसा' रूप में बदल जाता है, जैसे—कौसा बे (किस को) कौसा-न (किस से), कौसा पांधे (किस पर), कौसा-रा (किस का) आदि। ऐसे प्रयोग में 'कौसा' और 'कुणी' एक दूसरे का स्थान ले सकते हैं।

'की' कर्त्ताकारक अस्तित्त्व सूचक में इसी रूप में प्रयुक्त होता है। परन्तु इस का प्रयोग हिन्दी 'क्या' से एक दिशा में भिन्न है। हिन्दी 'क्या' के साथ कारक प्रत्ययों का प्रयोग नहीं होता परन्तु कुलुई 'की' के साथ कारक प्रत्यय भी जुड़ते हैं। तब यह 'कीज़ी' में बदलता हैं, जैसे कीज़ीबे (किस चीज़ या काहे को), कीज़ी-न (किस चीज़ में या काहे में), कीज़ी-रा (किस चीज का) आदि।

नीचे पुरुषवाचक तथा निश्चयवाचक सर्वनामों की कारक-रूपावली दी जाती है। शेष सर्वनामों का ऊपर विवरण दे दिया गया है :—

उत्तम—पुरुष 'हाऊं' (मैं)

	एक वचन	बहुवचन
कर्त्ता	हाऊं, मूं, मैं	आसें
कर्म	मूं, बें, हाऊं	आसाबें, आसें
करण	मैं, हाऊं, मूं, (सोंगें)	आसें, आसा (सोंगें)
सम्प्रदान	मूं-बें	आसाबें
अपादान	मू-न	आसा-न
सम्बन्ध	मेरा, मेरे, मेरी	आसारा, रे, री
अधिकरण	मूं-न (पांधे)	आसा-न (पांधे)

मध्यम-पुरुष 'तू' (तू)

कर्त्ता	तू, तें, तौ	तुसें
कर्म	तौ, बें, तू	तुसा, बें, तुसें
करण	तें, तौ (सोंगें)	तूसें, तुसा (सोंगे)
सम्प्रदान	तौबें	तुसाबें
अपादान	तौ-न	तुसा—न
सम्बन्ध	तेरा, रे, री	तुसारा, रे, री
अधिकरण	तौ-न (पांधें)	तुसा-न (पांधें)

अन्य-पुरूष 'सो' (वह पुल्लिग)

	एक वचन	बहुवचन
कर्ता	सो, तेईएँ	ते, तिउआ, तिन्हे
कर्म	तेईबेँ, सो	तिन्हाबेँ, ते
करण	तेईएँ, तेई (सोंगेँ)	तिन्हे, तिन्हा (सोंगेँ)
सम्प्रदान	तेइबेँ	तिन्हा-बेँ
अपादान	तेई-न	तिन्हा-न
सम्बन्ध	तेईरा, रे, री	तिन्हारा, रे, री
अधिकरण	तेई-न, तेई (पाधेँ)	तिन्हा-न, तिन्हा(पांधेँ)

सो (वह, स्त्रीलिंग)

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, अन्यपुरूष एकवचन 'सो' के रूप लिंग-भेद के अनुसार बदल जाते हैं। बहुवचन में रूप समान रहते हैं- तिन्हाबेँ, तिन्हारा आदि दोनों लिंगों के लिए सामान रूप से प्रयुक्त होते हैं, परन्तु एकवचन में स्त्री-लिंग के रूप भिन्न हैं, जो इस प्रकार है :

कर्ता	सो, तेसेँ	सम्प्रदान	तेसाबेँ
कर्म	तेसाबेँ, सो	अपादान	तेसा-न
करण	तेसेँ, तेसा (सोंगे)	सम्बन्ध	तेसारा, रे, री
अधिकरण	तेसा-न; तेसा (पांधेँ)		

निश्चयवाचक सर्वनाम 'ए' (यह, पुल्लिग)

कारक	एक बचन	बहुवचन
कर्ता	ए, एईएँ	ये, इंउआ, इन्हें
कर्म	एईबेँ, ए	इन्हा बेँ, ये
करण	एईएँ, एई सोंगेँ	इन्हें, इन्हा सोंगेँ
सम्प्रदान	एई-बेँ	इन्हा-बेँ
अपादान	एई-न	इन्हा-न
सम्बन्ध	एईरा-रे-री	इन्हारा-रे-री
अधिकरण	एई-न, एई पौधेँ	इन्हा-न, इन्हा पांधेँ

'ए' (यह) केवल एकवचन में रूप भिन्नता होती है—

कर्ता	ए, एसेँ	अपा.	एसा-न

कर्म	एसाबे॑, ए	सम्ब. एसारा-रे-री
करण	एसे॑, एसा (सोंगे)	अधि. एसा-न, ऐसा (पांवे॑)
सम्प्र. एसावे॑ ११		

बहुवचन रूप 'ए' पुल्लिग की तरह रहते हैं।

विशेषण

जो शब्द संज्ञा की विशेषता बताते हैं, उन्हें विशेषण कहते हैं। कुलुई मे चार प्रकार के विशेषण होते हैं :

१ गुणवाचक
२ संख्यावाचक
३ परिणामवाचक
४ सार्वनामिक

१ **गुणवाचक** : यह विशेषण संज्ञा या सर्वनामों की विशेषता या गुण दिखाते हैं। ये पुनः छः प्रकार के होते हैं :-

कालवाचक विशेषण काल या समय दर्शाते हैं, जैसे पिछ्ला दिहाड़ा, आगली रात, पराणा ज़माना, नूई॑ चाल । इन में पिछ्ला, आगली, पराणा, नूई॑ काल या समय को सूचित करते हैं तथा कालवाचक विशेशण है। कालवाचक विशेषण का सर्वप्रसिद्ध प्रत्यय 'का' है। संज्ञा शब्दों में 'का' जोड़ने से कालवाचक संज्ञाशब्द बनते है, जैसे- दिहाड़ (दिन) से दिहाड़का (दैनिक), रात से रात-का, बौरश (वर्ष) से बौरशका (वार्षिक) आदि।

२ **स्थानवाचक** विशेषण स्थान का बोध कराते हैं। 'ला' इस का मुख्य प्रत्यय हैं, यथा- बाहर से बाहरला (बाहर का), हांदर (अंदर) से हादरला, बुन्हला (नीचे का), ऊझला (ऊपर का), सौहरला (शहर का) आदि।

३. **आकारवाचक** विशेषण आकार का ज्ञान देते हैं। जैसे—घरोटली टोपी, लोमचा मुंह, चूंचरा नाक। इन में घरोटला (गोल), लोमचा (लम्बूतरा) चूंचरा (नुकीला) शब्द आकारवाचक विशेषण हैं।

४. **वर्णवाचक** विशेषण वे हैं जो रंग के द्योतक होते हैं, जैसे — लाल कोट, शेती टोपी, चिठी ऊन, हौरी बूटी आदि। शब्दों में लाल, शेती (श्वेत), चिठी (काली), हौरी (हरी) वर्णवाचक विशेषण हैं।

५. **दशावाचक** विशेषण जो दशा या स्थिति बताते हैं:- गरीब शोहरू, सेठ माण्हू, सीना टौल्हा, शुका माटा आदि यौगिक शब्दों में पूर्वोक्त शब्द उत्तरोक्त शब्दों की दशा का उल्लेख करते हैं अतः दशावाचक विशेषण हैं।

६. **गुणवाचक** विशेषण ऐसे विशेषण है जो संज्ञा आदि शब्दों के गुण व्यक्त करते हैं, जैसे खरा माण्हू, सौची काया, बुरी बेटड़ी आदि ।

२. **संख्यावाचक** ये संज्ञा या सर्वनामों की सांख्यिक स्थिति या मात्रा का बोध कराते हैं। इन विशेषणों को मुख्यत: दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है :—

१. **निश्चित संख्यावाचक** २. **अनिश्चित संख्यावाचक**

१. **निश्चित** संख्यावाचक विशेषण निश्चित संख्या के द्योतक होते हैं। कुलुई में केवल बीस तक की गिनती का विधान है, जैसे – एक, दुई, त्राई, चार, पोंज, 'छोह, सौत, औठ, नौ या नौऊ, दस या दौस; अगले दस रूप हिन्दी की तरह है, केवल एकाध में ध्वनि विकार आया है। जैसे—ठारा(अठारह), नींह (उन्नीस), बीह (बीस) ।

२. **अनिश्चित** संख्यवाचक शब्द अनिश्चित भाव प्रकट करते हैं। कुलुई में गणनावाचक संख्या के आगे 'एक' जोड़ने से अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण बनते हैं, यथा दुई से दुईएक (लगभग दो), औठ से औठएक (लगभग आठ), दस से दसएक (लगभग दस) । इस के अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे हैं जो अनिश्चय का बोध कराते हैं, जैसे सेम (सभी), किछ (कुछ), बोहू (बहुत), केतरेए (कितने ही), थोड़े आदि ।

३. **परिणामवाचक** जो शब्द माप, तोल या मात्रा आदि का भाव प्रकट करते हैं, उन्हें परिणामवाचक विशेषण कहा जाता है। माप के लिए सब से छोटी मात्रा 'सूत' है (सं० सूत्र)। उस से बड़ा माप 'आंगल' (सं० अगुल, हिं० उंगली) है। फिर क्रमिक शब्द इस प्रकार आते हैं, पेइंदल (सं०करतल), गरेंठ (अंगूठे के सिरे से तर्जनी के सिरे तक का माप), बेंथ (बालिश्त), हौथ (सं. हस्त, हिं. हाथ) और अन्त में लांच (सं. लव्ज, हि. कदम)।

मात्रा या तोल की सीमा 'मुठी' से शुरू होती है— एक मुठी नाज (मुठी भर अन्न), पौरस (सं. प्रसृ, हिं. खुली मुठी हथैली), नोला (सं. अञ्जली, हिं. खुले हाथों को साथ-साथ रखकर जो मात्रा आए)। अन्न आदि तोलने के लिए अगली मात्रा 'पौथा' है (सं. पस्त्य, लगभग १६ छटांक)। १६ पौथे का 'भार' होता है।

आजकल हिंदी के इंच, फुट, मीटर आदि शब्द चल पड़े हैं।

४. **सार्वनामिक** जैसा कि 'सर्वनाम' के अन्तर्गत देखा जा चुका है 'ए' (यह), सो (वह), जो या जुण (जो), तथा कुण (कौन) शब्द मूल रूप में सर्वनाम हैं। परन्तु जब ये किसी संज्ञा शब्द के साथ आएं या संज्ञा शब्द के गुण—विशेषता बताएं तो ये विशेषण की श्रेणी में आते हैं

और सार्वनामिक विशेषरण कहलाते है । इस स्थिति में यह सभी सर्वनाम पांच प्रकार के विशेषरण रूप धारण करते हैं, जिन की ऊपर व्याख्या की गई है, जैसे—

मूल सार्वनामिक विशेषरण	संख्या वाचक	परिमाण वाचक	प्रकार वाचक	आकार वाचक
ए (यह)	एती	एतरा	एण्डा	एबड़ा
सो (वह)	तेती	तेतरा	तेण्डा	तेबड़ा
जुरा (जो)	जेती	जेतरा	जेण्डा	जेबड़ा
कुरा (कौन)	केती	केतरा	केण्डा	केबड़ा

विशेषरणों का रूपान्तरण और तुलनात्मक-गुरा कुलुई में हिन्दी की तरह होता है । अतः इसे निर्देशन की आवश्यकता नहीं है ।

क्रिया-पद

जिस शब्द से किसी काम का होना या करना पाया जाता है उसे 'क्रिया' कहते हैं, यथा-खाणा, पीणा, उठणा, बेशणा, लिखणा आदि शब्द काम के होने या करने का भाव व्यक्त करते हैं अतः क्रियाएं हैं ।

क्रिया का मूल रूप 'धातु' होता है । धातु में 'णा' या 'ना' जोड़ने से क्रिया का मूल रूप बनता है । ऊपर के उदाहरणों में खा, पी, उठ, बेश, लिख शब्द 'धातु' हैं । इन में 'णा' जोड़ कर मूल क्रियाएं बनी हैं । 'धातु' के मुख्य दो भाग होते हैं— (१) सिद्ध धातु, और (२) साधित धातु ।

(१) **सिद्ध धातुए** वे होती हैं जो मूल धातुएं होती हैं, किसी और पर आधारित नहीं होती । कुल्लुई में सिद्ध धातुए निम्न श्रेणियों में दिखाई जा सकती है :-

(क) मूल धातुएं, यथा—ओस (सं० अवस, ओसणा 'उतरना'), कील (सं० कील, कीलणा 'कील देना'), खोण (सं० खन् , खोणना 'खोदना'), ग्राह सं० ग्रह, ग्राहणा 'इकट्ठा करना') क्षुद (सं० क्षुद्, क्षुदणा 'साफ करना'), खेद (सं. खिद्, खेदणा 'हांकना'), नौश (सं. नश, नौंशणा 'जाना') आदि ।

(ख) मूल धातु में उपसर्ग के संयोग से बनी धातुएं, जैसे —निहाल़ (स. नि+भाल, निहाल़ना 'प्रतीक्षा करना'), निखर (सं नि+क्षर, निखरना 'मैल साफ होना'), परेख (सं. परि+इक्ष, परेखणा 'जांच करना'), बिसर (सं. वि+स्मृ, बिसरना 'भूल जाना'), उकल (सं. उत्+चल, उकल़ना 'चढ़ना'), बियांज़ (सं, अवि+अञ्ज, बियांज़णा 'अलग करना) आदि ।

(ग) मूल धातु में 'कृ' धातु के संयोग से बनी ऐसी क्रियाएं जो संयोग का भाव मिटा चुकी हैं और मूल रूप धारण कर चुकी हैं, जैसे - सरक (सं. सृ+कृ, सरकणा 'सर सर करके चलना'), फड़क (सं. स्पद्+कृ, फड़कणा 'फड़-फड़ करना), रौड़क (सं. रट्+कृ, रौड़कणा 'रट-रट करना'), आदि।

(घ) देशी धातुएं जिन का सम्बन्ध संस्कृत से नहीं है, यथा-जांझ-जांझणा 'अलग करना', छनेर-छनेरना 'खाली करना', कोस-कोसणा 'बीच में डालना', झोट-झोटणा 'बुरी तरह दान्त से खाना', ठाक-ठाकणा 'रोकना' आदि।

(२) **साधित धातुएं** वे हैं जो मूल धातु में विकार या प्रसार लाने से निर्मित हुई हैं। ये मुख्यत: तीन प्रकार की पाई जाती हैं :-

(क) प्रेरणार्थक- मूल धातु में 'प्रेरणा' का बोध करवाने के लिए प्रत्यय जोड़ने से बनी धातुएं- जैसे-'बध' मूल धातु से 'बधा' प्रेरणार्थक धुतु और 'बधाणा' प्रेरणार्थक क्रिया (बढ़ाना)। इसी तरह शाध-शधा-शधाना (बुलाना), छिप - छपे-छपेणा (गर्म करना), शुक-शके-शकेणा (सुकाना), निम-नभेर-नभेरना (खत्म करना) हिश-शेल-शेलना (बुझाना) आदि।

(ख) नाम धातुएं-कुलुई में संज्ञा, विशेषण, क्रिया- विशेषण आदि से बड़ी सुगमता से क्रियाएं बनती हैं। इन के मूल रूप नाम धातुएं कहलाती है, यथा-मिश (गुस्सा) संज्ञा शब्द से मिशिणा (गुस्से होना), पियाशा (प्रकाश) से पियाशिणा (प्रकाश होना), बिशका (खाली) से बिशकिणा (खाली होना) पूरा से पूरिना (पूरा होना), आगे से आगरिना (आगे होना), पीछे से पीछिणा (पीछे होना) आदि।

(ग) अनुकरणात्मक धातुएं – ध्वनि के द्वित्व से या पुनरूक्ति से बनी धातुएं, यथा-तड़फड़ाइणा (तड़पना), थर-थराइणा (थर-थर करना), खण- कणा (लड़क जाना) आदि।

वाच्य—सकर्मक और अकर्मक

समस्त क्रियाएं मूलत: दो भागों में बांटी जाती हैं - सकर्मक और अकर्मक। जिस क्रिया के व्यापार का फल केवल कर्ता पर पड़े वह **अकर्मक** होती है। सोणा, उठणा, जाणा, गिरना आदि क्रियाओं का भाव केवल कर्ता से है। वह सोता है, जाता है, गिरता है।

जिस क्रिया के व्यापार का फल कर्म पर पड़ता है वह **सकर्मक** अर्थात् कर्मसहित क्रिया है। राम सेऊ खाआ सा, हाऊं कताब पौढ़ा सा आदि में 'खाणा' का व्यापार 'सेऊ' (सेब) से और 'पौढ़ना' का व्यापार 'कताब' से है, अत: ये सकर्मक हैं।

कुलुई में कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य तीनों के रूप मिलते हैं। परन्तु वाच्य के नियम हिन्दी से भिन्न हैं। हिन्दी में कर्मवाच्य रूप बनाते समय मूल क्रिया अपने भूतकालिक कृदन्त में रहती है और उस के साथ 'जाना' सहायक क्रिया के विभिन्न

रूपों का प्रयोग होता है। परन्तु कुलुई में कर्मवाच्य रूप के लिए 'जाना' जैसी सहायक क्रिया की आवश्यकता नहीं होती। यहां क्रिया का अपना ही कर्मवाच्य रूप बनता है और यह रूप मूल धातु में 'इ' प्रत्यय जोड़ने से बनता हैं, यथा खाणा (खाना) से खाइणा (खाया जाना), लिखणा से लिखिणा, पौढ़ना सी पौढ़िना आदि। कुलुई में एक मूल धातु की केवल एक ही प्रेरणार्थक क्रिया बनती है। हिन्दी की तरह दो नहीं बनतीं। परन्तु प्रत्येक मूल धातु और उस के प्रेरणार्थक रूप से अलग-अलग कर्मवाच्य रूप बनते हैं, उदाहरणत: —

मूल क्रिया	कर्मवाच्य रूप	प्रेरणार्थक क्रिया	कर्मवाच्य रूप
पीणा	पीइणा (पिया जाना)	पियाणा (पिलाना)	पियाइणा (पिलाया जाना)
जीणा	जीइणा (जिया जाना)	जियाणा (जीवित करना)	जियाइणा (जीवित किया जाना)
धोणा	धोइणा (धोया जाना)	धुआणा (धुलाना)	धुआइणा (धुलाया जाना)
सोणा	सोइणा (सोया जाना)	सुआणा (सुलाना)	सुआइणा (सुलाया जाना)
देणा	देइणा (दिया जाना)	दिआणा (दिलाणा)	दिआइणा (दिलाया जाना)
बधणा	बधिणा (बढ़ जाना)	बधेरना (बढ़ाना)	बधेरिना (बढ़ाया जाना)
घटणा	घटिणा (घट जाना)	घटेरना (घटाना)	घटेरिना (घटाया जाना)
छूटणा	छूटिणा (छूट जाना)	छटेरना (छोड़ना)	छटेरिना (छोड़ देना)
डूबणा	डूबिणा (डूब जाना)	डबेणा डबोना	डबेइणा (डबोया जाना)

धातुरूपावली

सभी धातुएं लिंग, बचन, पुरुष, काल, वाच्य तथा प्रकार के आधार पर परिवर्तित होती हैं। ऐसे रूप-भेद के लिए कुलुई धातुओं को चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

१.अधिक विस्तार के लिए देखें "पहाड़ी भाषा : कुलुई के विशेष संदर्भ में" ले० मौलू राम ठाकुर, पृ० ६२०-२६६।

१. सामान्य धातुएं
२. इकारान्त धातुएं
३ शकारान्त धातुएं
४. कुछ अपवाद ।

मूल रूप में सभी धातुएं एक ही प्रकार से निष्पन्न होती हैं; अर्थात् मूल धातु में 'ऊ' जोड़ने से भूतकालिक रूप बनता है, यथा उठ से उठू (उठा), पी से पीऊ (पिया), जी से जीऊ (जिया), ले से लेऊ (लिया), धो से धोऊ (धोया), ढो से ढोऊ (ढोया) आदि ।

इकारान्त धातुओं की स्थिति में, जिन में प्रमुखतः नाम धातुएं आती हैं, भूतकालिक रूप 'इ' को 'उआ' द्वारा प्रतिस्थापित करने से बनता है, यथा—राति (ना) से रातुआ (रात हुई), निहारि (ना) से निहारुआ (अंधेरा हुआ), निहाइ (णा) से निहाउआ (नहाया), भूखि (णा) से भूखुआ (भूख लगी) ।

शकारान्त धातुएं दो तरह बदलती हैं। जो शकारान्त धातुएं "सकर्मक" होती हैं उनका भूतकालिक रूप अन्य धातुओं की तरह 'ऊ' जोड़ने से बनता है, जैसे पीश से पीशू (पीसा), चूश से चूशू (चूसा), टूश से टूशू (साफ किया) आदि । परन्तु जो धातुएं अकर्मक हों उन की स्थिति में 'श' प्रायः 'ठा' द्वारा प्रतिस्थापित होता है, जैसे - बाश से बाठा, रुस से रूठा, हिश से हिठा (बुझा), बेश से बेठा (बैठा) आदि ।

उपर्युक्त नियमों के कुछ अपवाद हैं। कुछ ऐसी धातुएं है जिन के रुप अपने ढंग से बनते हैं। ये धातुएं हैं--दे, सो, मर, जा, हो, एज, तथा ओस । इन के भूतकालिक रूप क्रमशः इस प्रकार बनते हैं धीना (दिया), सुता (सोया), मुआँ (मरा), न्हौठा (गया), हुआ, आऊ (आया) तथा ओथा (उतरा) ।

काल रचना

कुलुई में विभिन्न कालों की रचना मुख्यतः दो तरह से की जाती है—(१) मूल क्रियाओं के रूप द्वारा, तथा (२) सहायक क्रियः 'हो' के विभिन्न रूपों के सहयोग से ।

नीचे विभिन्न कालों के रूप दिए जाते हैं—

वर्तमान आज्ञार्थ

'मैं उठूं' आदि —

एकवचन	बहुवचन
हाऊं उठनूं	आसे उठम
तू उठ	तुसे उठा
सो उठला	ते उठन

सामान्य वर्तमान

पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग समान रूप

"मैं उठता हूँ' आदि—

एक वचन	बहुवचन
हाऊं उठा सा	आसें उठा सी
तू उठा सा	तुसें उठा सी
सो उठा सा	ते उठा सी

अपूर्ण भूत

'पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग, एकवचन तथा बहुवचन'

"मैं उठता था' आदि—

हांऊं (आसें) उठा थी। तू (तूसें) उठा थी। सो (ते) उठा थी।

संदिग्ध वर्तमान

'पुल्लिग'

'मैं उठता हूँगा' आदि—

एक वचन	बहुवचन
हाऊ उठा होला	आसें उठा होलें
तू उठा होला	तुसें उठा होलें
सो उठा होला	ते उठा होलें

'स्त्रीलिंग'

हाऊं उठा होली	आसें उठा होली
तू उठा होली	तूसें उठा होली
सो उठा होली	ते (तिउंआ) उठा होली

अपूर्ण संकेतार्थ

'पुल्लिग'

'मैं उठता होता' आदि—

एक वचन	बहुवचन
हाऊं उठा हुंदा	आसें उठा हुंदें
तू उठा हुंदा	तूसे उठा हुंदें
सो उठा हुँदा	ते उठा हुंदें

'स्त्रीलिंग'

हांऊं उठा हुंदी	आसें उठा हुँदी
तू उठा हुंदी	तूसें उठा हुँदी
सो उठा हुँदी	ते उठा हुँदी

सामान्य भूत

'मैं उठा' आदि—

एक वचन पु./स्त्री.	बहुवचन पु./स्त्री.
हाऊं उठ्ठ/उठी	आसें उठें/उठी
तू उठ्ठ/उठी	तूसें उठें/उठी
सो उठ्ठ/उठी	ते उठें/उठी

आसन्न भूत

"मैं उठा हूं' आदि—

एक वचन पु/स्त्री.	बहुवचन पु./स्त्री.
हाऊं उठ्ठ सा/उठी सा	आसें उठें सी/उठी सी
तू उठ्ठ सा/उठी सा	तूसें उठें सी/उठी सी
सो उठ्ठ सा/उठी सा	ते उठें सी/तिउंआ उठी सी

पूर्ण भूत

'"मैं उठा था" आदि—

एक वचन पु./स्त्री.	बहु वचन पु./स्त्री
हाऊं उठ्ठ थी/उठी थी	आसें उठें थी/उठी/उठी थी
तू उठ्ठ थी/उठी थी	तूसें उठें थी/उठी थी
सो उठ्ठ थी/उठी थी	ते उठें थी/तिउंआ उठी थी

संदिग्ध भूत

"मैं उठा हूँगा" आदि—

एक वचन पु./स्त्री.	बहु वचन पु./स्त्री.
हाऊं उठ्ठ होला/उठी होली	आसें उठें होलें/उठी होली
तू उठ्ठ होला/उठी होली	तुसें उठे होलें/उठी होली
सो उठ्ठ होला/उठी होली	ते उठें होंलें/तिउंआ उठी होली

कर्म पुल्लिग, एक वचन	कर्म स्त्रीलिंग एक वचन
मैं/ग्रासें भौत खाऊ होला	मैं/ग्रासें रोटी खाई होली
तें/तुसें भौत खाऊ होला	तें/तुसें रोटी खाई होली
तेईएँ/तिन्हें भौत खाऊ होला	तेईएं/तिन्हें रोटी खाई होली
कर्म पुल्लिग, बहुवचन	**कर्म स्त्रीलिंग, बहुवचन**
मैं/ग्रासें छेत निडें होलें	मैं/ग्रासें शाड़ी निड़ी होली
तें/तुसें छेत निडे होलें	तें/तुसें शाड़ी निड़ी होली
तेईए/तिन्हें छेत निडें होलें	तेईए/तिन्हें शाड़ी निडी होली

पूर्ण संकेतार्थ

"मैं उठा होता" ग्रादि—

पुल्लिग		स्त्रीलिंग
एकवचन	बहुवचन	एकवचन/बहुवचन (समान)
हाऊं उठू हुँदा	ग्रासे उठें हुँदें	हाऊं/ग्रासें उठी हुंदी
तू उठू हुंदा	तूसें उठें हुंदें	तू/तुसें उठी हुंदी
सो उठू हुंदा	ते उठें हुंदें	सो/तिउंग्रा उठी हुंदी

सामान्य संकेतार्थ

"मैं उठता" ग्रादि—

पुल्लिग		स्त्रीलिंग
एकवचन	बहुवचन	एकवचन/बहुवचन (समान)
हाऊं उठदा	ग्रासें उठदें	हाऊं/ग्रासे उठदी
तू उठदा	तूसे उठदें	तू/तुसें उठदी
सो उठदा	ते उठदें	सो/तिउंग्रा उठदी

सम्भाव्य भविष्य

"मैं उठूं" ग्रादि

पुल्लिग		स्त्रीलिंग
एकवचन	बहुवचन	एकवचन/बहुवचन
हाऊं उठला	ग्रासें उठलें	हाऊं/ग्रासें उठली
तू उठला	तूसें उठलें	तू/तुसें उठली
सो उठला	ते उठलें	सो/तिउंग्रा उठली

सामान्य भविष्य

"मैं वृक्ष काटूंगा" आदि –

कर्म पुल्लिंग एक वचन	कर्म पुल्लिंग बहुवचन
मूं/आसा बूटा काटणा	मूं/आसा बूटे काटणे
तौ/तुसा बूटा काटणा	तौ/तुसा बूटे काटणे
तेई/तिन्हां बूटा काटणा	तई/तिन्हां बूटे काटणे

कर्म स्त्रीलिंग एक-बहुवचन (समान)

मूं/आसा बूटी काटणी
तौ/तुसा बूटी काटणी
तेई/तिन्हां बूटी काटणी

उपर्युक्त पांच स्थितियों में काल रचना भूतकालिक कृदन्त से निष्पन्न हुई है। इसके अतिरिक्त कुलुई में पुराघटित कृदन्त से भी काल रचना प्रचलित है। पुराघटित रूप दो तरह से बनते हैं—(क) मूल धातु में 'इरा' जोड़ने से, यथा—खाइरा 'खाया हुआ', बेशरा 'बैठा हुआ' नेइरा 'ले जाया हुआ' मौरीरा 'मरा हुआ' तथा (ख) मूल धातु में 'उदा' प्रत्यय जोड़ने से, जैसे—खाउदा (खाया हुआ), लिखुदा (लिखा हुआ) आदि। भूतकालिक कृदन्त से उत्पन्न पाँच कालों की रचना पुराघटित कृदन्त से इस प्रकार होती है: —

काल	भूतकालिक कृदन्त से	पुराघटित कृदन्त से
१. सामान्य भूत	सो उठू	सो उठिरा/उठुदा
२. आसन्न भूत	सो उठू सा	सो उठिरा सा/उठुदा सा
३. पूर्ण भूत	सो उठू थी	सो उठिरा थी/उठुदा थी
४. संदिग्ध भूत	सो उठू होला	सो उठिरा होला/उठुदा होला
५. पूर्ण संकेतार्थ	सो उठू हुँदा	सो उठिरा हुंदा/उठुदा हुँदा

अव्यय

जिन शब्दों में लिंग, वचन, काल, पुरुषादि के कारण साधारणतया परिवर्तन नहीं आता, उन्हें अव्यय कहते हैं। ये चार प्रकार के होते हैं - क्रियाविशेषण, सम्बन्धबोधक, समुच्चयबोधक और विस्मयादि बोधक।

1. क्रियाविशेषण

क्रिया के अर्थ में बिशेषता दिखाने वाले शब्दों को क्रियाविशेषण कहते हैं, जैसे सूले-सूले चौल

(धीरे-धीरे चल); छेके-छेके सीक (जल्दी-जल्दी चल) में सूले-सूले और छेके-छेके शब्द 'चौल' और 'सीक' क्रियाओं की विशेषता दिखा रहे हैं अतः क्रियाविशेषण हैं। इसके चार रूप हैं :—

(क) **स्थानवाचक** क्रियाविशेषण वे हैं जो स्थान का बोध कराते हैं— औखे (यहां), तौखे (वहां), इसे (इधर), किसे (किधर), जिसे-किसे (जहां कहीं) आदि। कुलुई में नीचे के लिए तीन शब्द हैं- हेठे, थाले, बुन्हे। इन में 'थाले' स्थितिवाचक और 'बुन्हे' दिशावाचक है। एक दूसरे का स्थान नहीं ले सकते। परन्तु 'हेठे' दोनों का स्थान ले सकता है। इसी प्रकार 'ऊपर' के अर्थ में भी तीन शब्द हैं-ऊझे, परयाले पांधे। 'ऊझे' दिशावाचक है और 'परयाले' एवं 'पांधे' स्थितिवाचक।

(ख) **कालवाचक** जो समय के द्योतक हों औज (आज) हीज (सं० ह्यस्, पिछला कल), फरज (गुजरा परसों), शूई (सं श्वस्, अगला कल), पोरशी (सं० परश्वः, आने वाला परसों), पौर (सं० परुत्, पिछला वर्ष), पराहुर (सं० परारि, पिछले से पिछला वर्ष), एशू (सं० एषम्, इस वर्ष), सोंझ (सं० सायं), भीश (प्रातः), नुहारी (Breakfast), कलार (मध्याह्न भोजन) बतौहरी (बाद दोपहर का भोजन), बियाली (रात का भोजन) आदि।

(ग) **परिमाणवाचक** क्रियाके परिमाण को बताने वाले शब्द परिमाणवाचक क्रिया विशेषण हैं — बोहू (बहुत), रज (काफी), गरका (भारी), हौलका (हल्का), निपट (बिल्कुल), धिख (थोड़ा सा), बख (बिल्कुल) एतरा (इतना), केतरा (कितना) आदि।

(घ) **रीति वाचक** क्रिया की रीति या ढंग के द्योतक शब्द रीतिवाचक क्रियाविशेषण हैं— सूले-सूले, छेके-छेके, मजे-मजे (धीरे-धीरे), ठीक-ठाक, हौथा-हौथ (हाथों-हाथ), सिमा-न (अचानक) आदि।

सम्बन्धबोधक

जो शब्द संज्ञा या सर्वनाम शब्दों से मिलकर उनका सम्बन्ध अन्य शब्दों के साथ स्थापित करे उन्हें सम्बन्धबोधक कहते हैं— घीऊआ बाझी रोटी नी खांदा 'घी बिना रोटी नहीं खाता', तौन्न चाड़े होर नी कोई 'तेरे सिवा और नहीं कोई' आदि में 'बाझी' और 'चाड़े' शब्द अन्य दो शब्दों के बीच सम्बन्ध दिखा रहे हैं, अतः सम्बन्ध सूचक है। कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं तांइये (लिए, खातिर), सेईं (साम्य, जैसा), ढेईं (बराबर, समान, तुल्य), ताईं (तक), लाइया (साथ), बीणी (बिना), सोंगे (संग), सुणे (समेत), पीछे (वजह से, पीछे), दौलत (बदौलत) आगे (पास) आदि।

समुच्चयबोधक

जो शब्द वाक्यों, दो शब्दों या वाक्य-खण्डों को जोड़े या अलग करे उन्हें समुच्चयबोधक

कहते हैं हौल ता कदाल आणा' 'हल और कुदाल ले आ', मूं एणा की तौ 'मैं आऊं या तू' आदि 'ता' और 'की' योजक शब्द हैं अतः समुच्चयबोधक हैं। वाक्यों को जोड़ते समय इन का प्रयोग दूर-दूर होता है -- कीता हाऊं केरनू कीता तू केरी 'या तो मैं करूं या तू करे। यहां कीता कीता अलग-अलग स्थान पर प्रयुक्त हुए हैं। इस श्रेणी के अन्य शब्द इस प्रकार हैं— जे (यदि), जे ता (यदि तो), किबे जे (क्योंकि), तेबे ता (तभी तो), पर (परन्तु), तेबे बी (फिर भी), बीणी—बीणी (या—या), नी—नी, ना—ना (न न), मां (मामे), कोल्हा—नी – बी (न केवल—भी), बुझणा (मानों), बी (भी) आदि।

विस्मयादिबोधक

जिन शब्दों में विस्मय, हर्ष, घृणा, दुखादि का भाव निहित हो उन्हें विस्मयादि बोधक अव्यय कहते हैं। कुलुई में शोक के लिए 'हो', 'आयो' (हाए), 'हो देऊआ' (हे देव !) आदि विस्मयादि बोधक अव्यय हैं। हर्ष के लिए औ, हा, हाकटे शब्द प्रचलित हैं। अनुमोदन के लिए 'ठीक', 'आछा', 'हां, हां हां', और तिरसकार के लिए 'छि', हे रामा', 'बुह' आदि विस्मयादि बोधक के द्योतक हैं।

इस श्रेणी में अधिकता उन शब्दों की है जो बुलाने या आह्वान के लिए प्रयुक्त होते हैं। किसी व्यक्ति को सम्बोधित करते हुए लिंग भेद के अनुसार अव्यय हैं पुरुष के लिए 'एई' और स्त्री के लिए 'एऊ' आम प्रचलित संकेत हैं। 'एई' हिन्दी 'रे' और 'एऊ' हिन्दी 'अरी' के पर्यायवाची हैं। पति-पत्नी एक-दूसरे को केवल इन्हीं शब्दों से सम्बोधित करते हैं एई हीज कौत्रे थी नौणदा (अरे ! कल कहां था गया हुआ?), एऊ बोलिरा शुणना की नी? (अरी, बोल के सुनती है या नहीं) पशुओ के पुकारने के लिए विभिन्न सम्बोधन हैं— कुत्ते के लिए 'चो-चो' बैल-गाय के लिए 'ओश', भेड़ों के लिए 'होई' बकरियों के लिए 'आछ', मुर्गियों के लिए 'कुड़-कुड़', भेड़-बकरियों के लिए अलग-अलग शब्द 'हां' और 'छां' भी हैं। आम बोल-चाल में पुरुष के लिए 'डे' और स्त्री के लिए 'ऐ' अधिक प्रयोग में आता है। परन्तु अन्य सम्बोधनों की तरह ये आरम्भ में नहीं अन्त में आते हैं—तुसे री धीरे कुण थी ड़े 'तुम्हारे यहां कौन था, अरे ! तेरा नाऊं की सा ऐ 'तेरा नाम क्या है, अरी' आदि।

सहायक निदेशक
भाषा एवं संस्कृति विभाग
परीमहल शिमला-4

कुल्लू की चित्रकला

● हरचरण सिंह

कुल्लू जिले में अन्य कलाओं के साथ साथ चित्रकला का भी विकास हुआ पर दुर्भाग्य से १७वीं शताब्दी से पूर्व के चित्र अब उपलब्ध नहीं, पर निश्चय ही प्राचीन काल में यह कला पनपती रही तथा भित्ति व अन्य विधायं प्रस्तुत हुई। लाहौल स्पीति तथा किन्नौर में ग्यारहवीं तथा बाहरवीं शताब्दी के भित्ति चित्र आज भी उपलब्ध हैं और निसंदेह कुल्लू में भी उस समय इनका निर्माण होता रहा होगा। पश्चिमी हिमालय के राज्यों में सत्रहवीं तथा अट्ठारहवीं शताब्दियों में एक विशिष्ट चित्र शैली का विकास हुआ जो पहाड़ी शैली के नाम से विख्यात हुई। इस शैली की विषय, वस्तु तथा धारणा उन कलाकारों के कृतित्व से भिन्न थी जो मुगल दरबार से समबद्ध थे। यह शैली महाकाव्यों तथा वैष्णव साहित्य के मिथकों को चित्रित करते हुए सदा पारम्परिक बनी रही। चित्रकला के प्रोत्साहन तथा उत्थान में इस तथ्य का विशेष महत्व रहा कि पर्वतीय शासकों ने वैष्णव मत अपनाया। यह कथन भागवत पुराण तथा रामायण के वैष्णवीय चित्रणों पर और भी लागू होता है। इसके अतिरिक्त राधा कृष्ण, नायक-नायिक प्रसंगों तथा रागमाला चित्रों को भी प्रस्तुत किया गया। पहाड़ी शैली के सूक्ष्म चित्रण का एक भिन्न उदेश्य भी था अर्थात् स्थानीय शासकों के प्रशंसात्मक व्यक्ति चित्र भी रचे जाते थे।

सम्भवत: सूक्ष्म चित्रण के क्षेत्र में ख्याति पाने वाली प्राचीनतम शैली बसोहली थी। अट्ठारहवी शताब्दी के आरम्भ में गुलेर तथा अन्य क्षेत्रों में बसोहली के कलाकार आ बसे। गुलेर में पहली बार सौन्दर्य के आदर्श भूत सिद्धान्तों का विकास हुआ। पहाड़ी शैली का चरमोत्कर्ष कांगड़ा शैली में अभिलक्षित होता है। अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सूक्ष्म चित्रण शैली की विशिष्ट विधाएं बिलासपुर, कुल्लू तथा अन्य क्षेत्रों में स्थापित हो चुकी थी। यह बसोहली तथा कांगड़ा-पूर्व कलम के प्रति ऋणी थी।

एक समय 'कुल्लू कलम' पद सामान्य तथा उन सूक्ष्म चित्रों के लिये प्रयुक्त होता था जिनमें लोक शैलियों सहित पूर्व कालिक पहाड़ी शैलियां परिलक्षित होती थीं। इनका उद्भव क्षेत्र निश्चित नहीं पर सामान शैली की कृतियां, मण्डी, सुकेत, तथा कांगड़ा तीनों में पाई गई। तथापि

खण्डालवाला, आर्चर तथा रन्धावा जैसे कलापारखियों के अनुसन्धानों ने सिद्ध कर दिया कि ऐसी एक निश्चित शैली का अस्तित्व कुल्लू में भी था।

कुल्लू कलम यह दावा नहीं करती इसमें उच्च कोटी का सौन्दर्य बोध है, पर इसमें जिस प्रकृति सुलभ भावना का बोध है वह इसे विशिष्टता प्रदान करता है। कभी कभी यह बसोहली शैली की आदिम-सजीवता को छू तो सकती है, तथापि सामान्यता इसमें गतिसम है। इन सूक्ष्म चित्रणों के स्वरूप में विविधा है, जिसका एक छोर प्राचीन पहाड़ी पद्धति को थामे हुए है, जिसकी तकनीक आदिम तथा असंस्कृत है तो दूसरा छोर उन उच्चतम कोटि के सूक्ष्म चित्रणों का है जो कांगड़ा शैली के प्रभाव का परिणाम हैं।

कुल्लू कलम यद्यपि अन्य पहाड़ी शैलियों द्वारा प्रभावित अवश्य हुई है इसने अपनी कुछ विशिष्टताओं का विकास किया। कुछ सीमा तक इस क्षेत्र की भौगोलिक विशेषताएं उत्तरदायी थीं। यदि ब्यास घाटी के ऊपरी भाग में थोड़े ढलुआं खेत हैं, चरगाहें तथा उपवन हैं तथापि शेष सारा क्षेत्र गर्जते प्रपातों तममाकृत गहराइयों सहित बीहड़ वनों का दृश्य प्रस्तुत करता है। मौसम की विषमता इसे जैसे पागलपन के अट्टाहास से भर देती है। कलाकार भावुक होने से स्थानीय पर्यावरण से अप्रभावित नहीं रह सकता। चित्रों में जिन तरूलताओं का चित्रण है वह सब इसी घाटी में फलते फूलते हैं। देवदारू तथा चीड़ का चित्रण कलाकार के लिये स्वाभाविक था क्योंकि यह कुल्लू क्षेत्र के वनस्पति जीवन की विशिष्टता हैं।

मनोरंजक बात यह है, यद्यपि कुल्लू की अपनी विशिष्ट वेश भूषा है तथा सूक्ष्म चित्रों में यह कहीं भी चित्रित नहीं—यही बात चित्रित आवासों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। अन्य सूक्ष्म चित्र शैलियों में सामान्य रूप से जो दरबारी परिधान दर्शाया गया वही यहां भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि कलाकारों ने निश्चित परम्पराओं का अनुसरण किया तथा उसी पद्धति को पकड़ा जो समाज के उच्च वर्ग के लिये स्वीकार्य थी जो कि इनका आश्रयदाता था। कहीं २ उन स्त्रियों को गद्दी वेश-भूषा में दर्शाया गया है जो राजवंश से सम्बध नहीं और ऐसे पुरूष तिब्बती नोकीली टोपियां पहने हैं।

चित्रित भवनों की निर्माण शैली भी इस क्षेत्र की नहीं यह बहुधा कल्पना प्रस्तुत है। इसी प्रकार बर्फीले दृश्यों का इन चित्रों में अस्तित्व ही नहीं जो इस क्षेत्र की प्रकृतिदत्त विशेषता है। तथापि कुछेक चित्रों में चित्रित मण्डराते मेघ तथा स्फेनिल आकाश उन लहराते कुहासों तथा बादलों के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं जो इस घाटी में प्राय: देखने को मिल जाते हैं। आकाश में ऐसा चित्रण "परिचारिकाओं सहित राजकुमारी" "मृग युगल को खिलाते प्रेमी" "राधा का चुम्बन लेते हुए कृष्ण" "शृंगार करती हुई महिला" इत्यादि चित्रों में देखा जा सकता[1] है।

---

१. डब्लयू. जी. आर्चर, पश्चिमी हिमालय में चित्रकला, पृष्ट ३२५-३२६.

बहुत पहले के शस्त्रीय चित्रों के समान ही पहाड़ी सूक्ष्म चित्र अधिकतर अनाम हैं, परिणामस्वरूप इनके कलाकारों के बहुत कम नाम प्राप्य हैं। कुल्लू कलम का एक कलाकार भगवान था जिसके सम्बन्ध में ऐसा प्रतीत होता है कि वह राजा प्रीतम सिंह (१७६६-१८०६) का वेतन भोगी था। उसकी विशिष्ट कृतियों में "भागवत पुराण के चित्रण हैं जिन्हें १७६४[2] में प्रस्तुत किया गया। इसके साथ "मधु मालती" माला के तीन चित्रों का संग्रह भी है। सम्भव है कि उसने "सुन्दर श्रृंगार"[3] का भी चित्रण किया हो। तथापि इस कलाकार के जीवन सम्बन्धी तथ्य दुर्लभ हैं। कुल्लू क्षेत्र का एक और कलाकार सजनु हुआ होगा जिसने सुल्तानपुर के शीश महल के "देवी" भित्ती चित्रों का निर्माण[4] किया।

कुल्लू की चित्रकला का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तथाप्राचीनतम उपलब्ध उदाहरण "शांगरी रामायण" श्रृंखला है जिसमें दो सौ पचहत्तर चित्र सम्मिलित हैं। इनमें रामायण के पृथक काण्डों से सम्बन्धित चित्र हैं, जैसे बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, लंकाकाण्ड, किशकिंधा काण्ड, समुद्रकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड। इनकी शैलियां भिन्न-भिन्न हैं, और यह विभिन्न कलाकारों की कृतियां जान पड़ती[5] हैं। इस श्रृंखला का समय अनुमान से मानसिंह (१६८८-१७१६) का शासन काल कहा जा सकता है। यद्यपि इनकी रचना विभिन्न कलाकारों ने विभिन्न समयों पर की। इस श्रृंखला में शैली की एक निश्चित निरंतरता है और यह भी निश्चय है कि यह बसोहली शैली से सम्बध है। इन चित्रों की सुनहरी पृष्ठभूमि में भवन स्पष्ट रूप से उभरते हैं। भित्तियों में दर्शाये गये द्वार तथा नुकीली दिवारों के स्थान पर गहरे चिन्ह इन चित्रों को सशक्त बनाते हैं। अलंकरणों के लिये स्वर्ण तथा रजत वर्ण का बहुधा प्रयोग होता था। जहां तक पक्षियों का सम्बन्ध है इनकी अपनी विशिष्ट पद्धति थी। वृक्ष विशद कल्पना प्रभूत विविध रंगों के पुष्पों से अलंकृत हैं, जैसे "वानर सम्मेलन"[6] तथा "बाल्मीकि आश्रम' में[7]।

कृष्ण प्रसंग के विविध चित्र मिले हैं। इस प्रसंग के बहुत पहले के चित्रों में से एक "चीड़ों में से निकलते कृष्ण और राधा" हैं जिसका समय लगभग १७५० ईसवी का है। स्पष्ट ही है कि इस चित्र में देवता की मुखाकृति बसोहली शैली की है "दान लीला" प्रसंग जो कृष्ण से सम्बध है, न केवल कुल्लू शैली के अपितु पश्चिमी हिमालय के अन्य शैलियों के भी अनेकों सूक्ष्म चित्रों का विषय रहा है। खण्डालवाला ने जिस "दान लीला" चित्र का विवरण दिया है, वह प्रसंग के चित्रों का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

---

२. खण्डालवाला, पहाड़ी सूक्ष्म चित्र, पृष्ट, २७०-२७१.
३. बी. न गोस्वामी, नल-दमयन्ती विषय का पहाड़ी चित्र, पृष्ट, ४६.
४. जगदीश मित्तल, रूपरेखा, २२, संख्या २, १६६१, पृष्ट, ८५-६७.
५. म. स. रन्धावा, बसोहली चित्रकला, पृष्ट, २१.
३. आर्चर पृष्ट ३२७,
७. रन्धावा, चित्र संख्या १६.

रास पञ्चाध्यायी चित्रमाला (१७६० १८००) भी कृष्ण प्रसंग में शामिल है। इस चित्रमाला का विवरण नहीं मिलता। तथापि इस माला तथा भागवत पुराण माला और मधु-मालती माला में समानता यह संकेत करती है कि यह कलाकार भगवान की अथवा उसी कुल के किसी अन्य कलाकार की कृति है। इस चित्रमाला के कुछ महत्त्वपूर्ण चित्र "वन में राधा और कृष्ण" 'कुञ्जस्थ राधा कृष्ण", कक्षस्थ राधा कृष्ण", "कृष्ण के समाचार की प्रतीक्षा में राधा" तथा "विश्वास पात्री द्वारा आश्वासित राधा।

कृष्ण प्रसंग में एक अन्य शैली वेणुगोपाल माला कहलाती है। यह सूक्ष्म चित्र लोक कला के निकटतर है। इसके उदाहरण कुल्लू क्षेत्र में अन्य किसी भी शैली से अधिक सुलभ हैं। इन चित्रों के नायक कृष्ण हैं, जो दिव्य बंशीवादक के रूप में वेणुगोपाल कहलाते हैं। ऐसे चित्र केवल दरबारियों के लिए बने हैं ऐसा सम्भव प्रतीत नहीं होता। इस माला की रचना अठ्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में अथवा उन्नीसवीं के आरम्भ में हुई होगी। इसमें आकृतियों का आधिक्य इस तथ्य का सूचक है कि भव्य शैली पतनोमुख थी।

कुल्लू कलम का एक अन्य उदाहरण विक्रम वैताल कथा माला है। इस चित्रमाला का सम्बन्ध जीवन तथा मृत्यु से होने के कारण खण्डालवाला के मत से इन पर न केवल बसोहली कलम की छाया थी अपितु समसामयिक नेपाली चित्रों की भी झलक थी।" परन्तु तिब्बती प्रभाव अधिक सम्भव जान पड़ता है क्योंकि लाहौल तथा लद्दाख के मार्ग से कुल्लू और तिब्बत में परस्पर व्यापार सम्बन्ध थे।

पहाड़ी कलाकारों की एक विशिष्ट व्यस्तता व्यक्ति चित्रण थी। संरक्षक शासकों तथा अतिथियों के व्यक्ति चित्र प्रायः बनाये जाते थे। इस क्षेत्र में कुल्लू से प्राप्त प्राचीनतम चित्रों में एक "बाहू के राजा करिपाल देव धूम्रपान करते हुये" हैं जिसका समय लगभग १६६० का है। कुछ बातों में यह चित्र शांगरी रामायण माला की याद दिलाता है। "राजा आनन्द देव दो पारिचारिकाओं सहित" नामक (लगभग १७००) एक सूक्ष्म चित्र का नायक बाहू का राजा आनन्द देव है। कुल्लू नरेश टेढ़ी सिंह (१७४०-१७६७) अनेक व्यक्ति चित्रों का नायक है, जिनकी रचना सम्भवतः अट्ठाहरवीं शताब्दी के तृतीयपाद में हुई होगी। उसका चित्रण मानो एकाकी हुआ है जैसे "कुल्लू के राजा टेढ़ी सिंह धूम्र पान करते हुए" अथवा समय समय पर अपने प्रिय पात्रों सहित जैसे "कुल्लू के राजा टेढ़ी सिंह प्रिय पात्रों सहित"। कुल्लू शैली में एक अन्य ख्याति प्राप्त व्यक्ति चित्र हरिदास का है जिसकी रचना अट्ठाहरवीं शताब्दी के अन्त में हुई होगी। इस व्यक्ति के अनेक चित्र हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि निश्चय ही यह प्रतिष्ठित व्यक्ति रहा होगा सम्भवतः सामन्त हो, निर्विवाद रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति चित्र का एक अन्य उदाहरण "औरंगजेब के मुग़ल शैली के व्यक्ति चित्र का स्थानीय

रूपान्तर है"। इसे अट्ठाहरवीं शताब्दी के अन्त में बनाया गया है। इसे व्यक्ति चित्र कहने के स्थान पर व्यंग्य चित्र कहना अधिक उपयुक्त होगा। यहां अश्वारोही औरंगजेब झुक कर लगभग दोहरा हो गया है। इस सूक्ष्म चित्र की पृष्ट भूमि नीलवर्ण है, ऊपर ऊडीयमान कोई पक्षी है जिसकी वास्तव में इस चित्र में कोई भूमिका नहीं है तथापि यह कुल्लू कलम की एक विशिष्टता है। मुगल दरबार से भागकर यहां शरण लेने वाले अनेक कलाकार मुगल शासकों की आकृतियां इस प्रकार अंकित करते रहते थे।

राजवंश की महिलाओं के भी कुछ सूक्ष्म चित्र प्राप्य हैं— जैसे "हुक्के वाली महिला", परिचारिका सहित महिला" इत्यादि। कुछ अन्य चित्रों का उल्लेख भी किया जा सकता है, यथा "धूम्रपान करती राजकुमारी परिचारिकाओं सहित", "हुक्का पीती महिला सहित राजकुमारी। ये सभी चित्र एक बात के लिये उल्लेखनीय हैं वह है इनका उज्जवल वर्ण-तरंग।

एक महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय से सम्बन्धित तथा वणिक वर्ग के सदस्य गोसांई, दो गोसांई" नामक एक सूक्ष्म चित्र के नायक हैं। इस रचना में थोड़ा गोपनीयता का वातावरण है ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों गोसाई दबे स्वर में वार्तालाप में व्यस्त हैं एक के हाथ में कोई कागज है।

कुल्लू कलम के कलाकारों मे नायक-नायिका प्रसंग सम्भवतः लोकप्रिय नहीं था – कारण इस प्रसंग के बहुत कम चित्र मिले हैं। खण्डालवाला ने केवल दो का उल्लेख किया है जो यद्यपि सत्रहवीं शताब्दी के अन्त की बसोहली पद्धति पर अधारित हैं, तथापि इनके वातावरण में मुक्त क्रुरता है।

भागवत पुराण तथा मधु-मालती वर्ग के कुछ चित्र भी प्राप्त हुये हैं जिनके साथ कलाकार भगवान का नाम जुड़ा है। भागवत पुराण से सम्बन्धित चित्रों के सम्बन्ध में पहले यह मत था कि ये हरिवंश का चित्रण करते हैं। पर इनमें से एक पर दी गई सूचना यह प्रमाणित करती है कि यह विशेष माला भागवत पुराण का ही चित्रण करती है तथा इसकी रचना राजा प्रीतम सिंह के शासन काल में रघुनाथपुर में १७९४ में हुई थी। १७९० तथा १८०० के मध्य भगवान द्वारा 'मधु-मालती' की तीन मालायें कुल्लू में चित्रित हुई। इस शृंखला से शैली की अधोगति स्पष्ट सूचित होती है। उदाहरणार्थ — "मालती से वार्तालाप रत व्यक्ति" अपेक्षाकृत बहुत लम्बे आकार के हैं।

राग माला चित्र पहाड़ी तथा राजपूत दोनों ही शैलियों में विशिष्ट रहे हैं। इनमें सामान्यता किसी राग अथवा रागिनी का मुख्य प्रसंग चित्र रूप में प्रस्तुत किया जाता है। तथापि चित्रकारों ने संगीत रूपों को चित्रित करते समय किसी विशेष ग्रंथ का अनुसरण नहीं किया तथा विभिन्न चित्र शैलियों के रागमाला चित्रों में राग चित्रण में निरन्तर अन्तर दृष्टिगोचर होता है। इसी क्षेत्र में जब तक सूक्ष्म चित्रों के चित्रकार संगीत रूपों का चित्रण करने में व्यस्त हुए तब तक प्रत्येक राग अथवा रागिनी का चित्र रूप स्पष्ट हो चुका था। आर्चर एक रागमाला शृंखला

के बत्तीस चित्रों का उल्लेख करता है। इस श्रृंखला में छह मुख्य रागों, पांच रागिनियों तथा आठ उप-रागों अर्थात् पुत्रों का चित्रण हुआ है। किसी रागिनी तथा पुत्रों का अपने विशिष्ट राग से सम्बन्ध पृष्ट भूमि तथा हाशिये के सामान वर्णों के प्रयोग से सूचित होता है।

भित्ती चित्र : सूक्ष्म चित्रों के साथ साथ कुल्लू के भित्ती चित्रों का अंकन भी हुआ है। पश्चिमी हिमालय में भित्ती चित्रों का आरम्भ सम्भवतः लोक परम्पराओं के आधार पर हुआ है। मन्दिरों तथा आवासों की दीवारों पर चित्रांकन प्रायः होता था पर अट्ठाहरवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियों में इस लोक कला पर नियमबद्ध दरबारी कला का प्रभाव पड़ा। परिणाम स्वरूप अर्की, सुजानपुर, नदौन, चम्बा तथा कुल्लू के भित्ती चित्रों की विषयवस्तु सूक्ष्म चित्रों ही के परम्परागत प्रसंग हैं।

कुछ भित्ती चित्र सुल्तानपुर के शीश महल से मिले हैं जहां कुल्लू नरेशों की अन्तिम राजधानी थी। इनकी विषयवस्तु धर्म सम्बन्धित है. यथा राम विवाह तथा कृष्ण लीला। सबसे बड़ा तथा सर्वाधिक प्रभावशाली भित्ती चित्र "देवी भित्ती चित्र' है जो अब राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में है इनका अंकन राजा प्रीतम सिंह के संरक्षण में हुआ जो कि कांगड़ा के संसार चन्द का समकालीन था यह भित्ती चित्र बहुत बड़ा फलक है (३.७८ मीटर × २.२६ मीटर) जिसमें देवी त्रिपुरा सुन्दरी त्रीलोकीय द्वारा पूजित है। राजा प्रीतम सिंह को देवी के सम्मुख खड़े दिखाया गया है। यह भित्ती चित्र अद्वितीय है, यह पश्चिमी हिमालय के अन्य भित्ती चित्रों से पूर्णतया भिन्न है। शैली तथा पद्धति में यह चम्बा के प्रसिद्ध रंग-महल भित्ती चित्रों से सभी बातों में भिन्न है। यह भित्ती आड़े और तिरछे किनारों को मिला कर बना है, जिससे आयतें बनती जाती हैं, जो कि केन्द्र की ओर आकार में छोटी होती चलती हैं।

सुल्तानपुर से ऊपर भेखली (भद्रकाली) मन्दिर में भी कुछ भित्ती चित्र मिले हैं और यह उन थोड़े से मन्दिरो में से है, जहां भित्ती चित्र अभी तक सुरक्षित हैं। इन भित्ती चित्रों में से सब से अधिक महत्वपूर्ण दुर्गा, महाकाली, विष्णु विराट रूप हैं। मदनजीत सिंह ने इनका समय सोलहवीं अथवा सतहरवीं शताब्दी निश्चित किया है, जो ठीक नहीं जान पड़ता। सम्भवत: यह उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से सम्बन्धित हैं।

द्वारा, माडर्न आर्ट स्टूडियो,
दी माल, शिमला-1

★★★★
★★★
★★
★

कुल्लू के विशिष्ट मुहावरे व लकोक्तियां

●प्रकाश देव

किसी भी, भाषा को सुसज्जित रूप प्रदान करने के लिए मुहावरे व लोकोक्तियों का विशेष महत्त्व होता है। कहावत का प्रयोग ज्यों का त्यों होता है तथा मुहावरे का प्रयोग वाक्यानुसार किया जाता है, अर्थ की दृष्टि से मुहावरे की अपेक्षा कहावतें सम्पूर्ण होती हैं। मुहावरे और कहावतें ज्ञान राशि से भरपूर होती हैं। कुल्लूई उपभाषा में मुहावरों और लोकोक्तियों का स्थान स्थान पर प्रयोग होता है। कुछ आम प्रचलित मुहावरों व लोकोक्तियों का यहां वर्णन किया जा रहा है।

मुहावरे—

१. शुग्गे साही ट्रँ— किसी व्यक्ति को बहुत समझाने पर भी न समझना। शुग्गा जंगली तोते को कहते हैं उसे पढ़ाया जाए तो वह केवल बाद में ट्रँ की आवज ही निकालेगा।

२. हीक्का बैं बौंता— किसी व्यक्ति का बहुत दुःखदायी होना। कहने पर भी ढिठाई दिखाना।

३. बिभे रे बौंगे काटणे - किसी कार्य को करने के वजाय उस सम्बन्ध में पहले अपनी ओर से बातें करना।

४. खाख बाकणी— किसी भी वस्तु की प्राप्ति के लिए अधिक चेष्टा करना।

५. काणा बांडा केरना समान न समझना, किसी को कम देना व किसी को अधिक।

६ ओर्लें न बुद्दा— छोटी वस्तु का बड़ी वस्तु में बिल्कुल ही समा जाना अर्थात् उस वस्तु का कोई विशेष लाभ न होना।

७. जानी बैं दान्धा— जान के लिए आफत।

८. खाई पीया खशकदे— बिल्कुल मतलवी होना।

९. ढऊए री खेला — पैसों का ही महत्त्व अथवा पैसे की प्रधानता ।

१०. घोरठे री टोंटली— कभी चुप न होना। टोटली घराट में एक लकड़ी का छोटा सा यन्त्र होता है जो घराट के चालू होने पर लगातार बजता रहता है ।

११. थुक्के रे बौड़े — बड़ी कंजूसी करना ।

१२. उखले री मकोड़ी— कुछ न सीख पाना अर्थात् तरक्की न करना ।

१३. दौन्द नी खुबदे – जब किसी की अधिक न चले तो इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है ।

१४. दिल्ली रांहीया कुप्पे जहां पर कुछ सीखने का क्षेत्र हो और वहां भी कुछ न सीख पाना अर्थात् बिल्कुल बुद्धू के बुद्धू रहना ।

१५. घौर कदाल् – घर को नुकसान पहुँचाने वाला ।

१६. थुक्के तोहलदा — बहुत ही कमजोर होना ।

१७. चोरे ठगुआदा — बहुत शक्की होना ।

१८. बीझे सरगे री विजली — अचानक ही किसी बात का घटित हो जाना ।

१९. भेड़ पुच्छीया नी मुनणी – जो काम करना है वह तो करना ही है ।

२०. शियाली रा पुल् — बहुत ही अस्थायी चीज़ बनाना ।

२१. बान्दरे रा बुबू— थोड़ी सी दर्द हो परन्तु उसमें अपने आप को यों ही अधिक पीड़ित दिखाना ।

२२. एज कुत्तेया मेरी टांग खा — आ बैल मुझे मार ।

२३. घौरठ फिरदी पाली – समय के साथ साथ प्रत्येक मनुष्य को एकसा अनुभव होना ।

२४. टक्के बाछी टकटकाट—बिना पैसों के कुछ भी नहीं होता ।

२५. चोरे रे मन कोजले— चोर की दाढ़ी में तिनका ।

२६. हवन केरदेआ हौथ भी फुकीया सी— किसी का भला करने से नुकसान भी उठाना पड़ता है ।

२७. रोशी फुकुई पर ब्याट नी नौठी – नुकसान उठाने पर भी न सम्भले ।

२८. पीहू साई भटकणा— बहुत तड़पना ।

२९. औठा पन्धे नौऊ – सफेद झूठ ।

३०. पेटे रे बाड़े दुखणा— लोट पोट हो जाना ।

लोकोक्तियां

१. जेत्तारा बाड़ तेतरा जुआड़—जिस बात पर अधिक पाबन्दी लगाई जाए और वह आवश्य घटित हो तो इस लोकोक्ति का प्रयोग होता है।

२. कीड़े रा चिढुआदा - दूध का जला छाछ को फूंक मार मार कर पीता है।
जेऊड़े न डों॑रा सा

३. ऐड़े का मुंबे खा – अपने आप मुसीबत मोल लेना,

४. चिकरा न बाहणी मूंह थेचणा—दुष्ट आदमी से व्यर्थ में बैर लेना,

५. लोके री खोपरीकौद्दू रे तोले—दूसरे की चीज को कुछ न समझना।

६. फाड़े री रोटी फाड़े न चोड़नी—छोटी बात को बढ़ाने की अपेक्षा वहीं खत्म करना।

७. नानी बै की ननिहाल दसणा – सूर्य के आगे दीपक दिखाना ।

८. छाई री तेंई मुच्छां मुन्नी न मुच्छा न छा - फाईदा करने की कोशिश में नुकसान उठाना।

९. काऊड़े रा हुआ उडणा बोते रा हुआ बाहणा—बहाना लगना।

१०. जोखे बाजू ढोलकू तोखे भियां मोलकू—हर जगह विराजमान होना।

११. का री धीरे काफल पौके—बहुत खुशी होना।

१२ घौणी बुट्टी रे घौणे जलाड़ बोऊ—जहां प्यार अधिक हो वहां बैर जल्दी हो जाता है।
भूरी रे थोड़े ध्याड़े

१३. घड़ोलू भोनियां की दाआ सोथणे—अब पछताए क्या होता जब चिड़िया चुग गई खेत।

१४. खाणे थी दाणे चुत्थे नी लाणे – लाभ की आशा तो रखना परन्तु काम न करना ।

१५. ऐज मौतीए फुट घौरतीए—अनहोनी बात करना।

१६. मुंगीया मौत कोतिया धन – बगैर परिश्रम से फल की इच्छा।

१७. सुखे री तेंई नौठें शूरू परीणी – जिसके भाग्य में सुख न हो तो वह कहीं भी नहीं मिलता।
तोखे बी मेली कोदरा चीणी

१८. धाने रा थोग पराली आगै – पहले ही आभास हो जाना।
मुशै रा थोग बराली आगै

१९. जौसा रा कील, तिन्हां रा सील— जितना परिश्रम उतना फल।

गांव अरछन्डी
जिला कुल्लू

सोमसी

tharahkardu.in

आर. एन. २८२७१/७५

१. निदेशक, शिक्षा विभाग, हि. प्र. द्वारा पत्रांक इ. डी. एन. एच. ६(८)-(६)-(३)१/७५, दिनांक २४ फरवरी, १९७५ के अधीन समस्त कालेजों, स्कूलों और जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत ।

२. निदेशक, पंचायत विभाग, हि. प्र. द्वारा पत्र संख्या ७-३/६६ पंच ३, दिनांक २१ जुलाई, १९७७ के अनुसार प्रदेश के खण्ड विकास तथा पंचायत पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत ।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, शिमला द्वारा प्रकाशित तथा
"न्यू प्रिंटर्ज़" ग्रीन फिल्ड कॉटेज (नजदीक आईस स्केटिंग रिंक), शिमला-१७१००१,
दूरभाष : ५१२३, द्वारा मुद्रित ।